रीढ़—जो ३३ हड्डियों से मिलकर बनी है। रीढ़ पर ही सिर का डब्बा रक्खा हुआ है। इनमें से नीचे की ९ हड्डि- मिलकर दो बड़ी हड्डियाँ बनाती हैं, जिन्हे, त्रिक और पुच्छ-अस्थि कहते हैं। १२-१२ हड्डियाँ रीढ़ के आगे छाती पर दोनों ओर होती हैं जिन्हे पसलियाँ कहते हैं। इन्हीं के भीतर हृदय और फेफड़े सुरक्षित हैं। पसली की हड्डियाँ लोचदार होती हैं इसी से वे साँस लेने और छोड़ने पर सिकुड़ती फैलती रहती हैं।

उच्च शाखाएं—दो हैं। प्रत्येक शाखा मे ३२-३२ हड्डियाँ हैं जो इस प्रकार हैं:—हँसुली, स्कन्ध, हवा की हड्डी, अग्रबाहु की दो हड्डी, कलाई या पहुँचे की आठ, हथेली की पाँच और अंगुलियों की चौदह। ये एक ओर (शाखा) की हुई। दो शाखाओं की सब मिलाकर चौंसठ हुईं।

निम्न शाखाएं—दो हैं। प्रत्येक में ३१-३१ हड्डियाँ हैं जो इस प्रकार हैं.—कूल्हे मे एक, जंघे में एक, घुटने में एक, पिंडली में दो, टखने में सात, पैर में पाँच, अगुलियों मे चौदह। इस तरह दोनों शाखाओं में ६२ हड्डियाँ हुईं।

यह हड्डियों का ढाँचा है जिस पर शरीर सधा है।

अस्थि-पजर के ऊपर मांस-शरीर है। मास, शरीर के प्रत्येक हिस्से में रहता है। हड्डी के भयानक ढाँचे को ढ

विषय-सूची

आवश्यक निवेदन

पहले न मुझे आसनों के चमत्कारिक प्रभाव का ही ज्ञान था और न उन पर मेरी श्रद्धा या विश्वास ही था। विश्वास न होने का एक कारण यह भी था कि शहरो मे मैं कभी कभी बाजारों में आसन दिखा कर पैसा मांगने वालों को देखता था, अब भी देखता हूँ पर उनके शरीर या मुख पर कोई ऐसा चमत्कारिक प्रभाव सिवाय इसके कि वे अपने अङ्गों को इच्छानुसार मोड़ सकते हैं—न पाता था। वास्तव में इसका कारण भी मेरे विचार की कमी, कि मैंने उन मँगता साधको की अनस्थिरता, निम्न उद्देश्य, समय क्रम का अविचार, उल्टी सुल्टी गतिविधि, स्थान का ठीक न होना, आहार विहार का अविचार और अनियमितता आदि पर ध्यान नही दिया। और यह सही भी है कि उपर्युक्त बातों के होते हुए हम आसनों के वास्तविक रहस्य का अनुभव नही कर सकते।

अस्तु, इधर कुछ वर्षों से स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ अच्छी अच्छी पुस्तकें मेरे पढ़ने मे आईं साथ ही मुझे हठ योग प्रदीपिका तथा कुछ आसनों की और प्राणायाम सम्बन्धी पुस्तके पढ़ने को मिली। मैंने अपने एक मित्र को भी जो बहुत हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ हैं—आसनों का निरन्तर अभ्यास करते और उनका प्रभाव वाणी तथा प्रत्यक्ष शरीर द्वारा वर्णन करते हुए पाया। इन सब बातों से मेरा झुकाव और विश्वास आसनों की ओर हुआ। जब मैंने अध्ययन और विश्वास पूर्वक ख़ुद कुछ आसनों का अभ्यास प्रारम्भ किया तो कुछ काल में ही उनके प्रभाव पर मेरी अटल श्रद्धा हो गई और ऐसा दृढ़ मत हो गया कि विधि-विहित आसन मनुष्य को शारीरिक स्वास्थ्य

आरोग्यता और आध्यात्मिक जगत की ओर ले जाने के साथ साथ दीर्घजीवी बनाने वाले हैं।

आसनों के साथ स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्यान्य बातों का बहुत गहरा सम्बन्ध है। बिना उन बातों के जाने लक्ष्य-सिद्धि पर पहुँचना कठिन है। मैंने अलग अलग स्वास्थ्य तथा आसन योग सम्बन्धी पुस्तकों को पढ़कर यह अनुभव किया कि एक ऐसी पुस्तक होनी चाहिये जिसमे उपर्युक्त तीनों बाते सम्मिलित हों तो बहुत लाभ हो सकता है यदि स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्यान्य बातों के विचार के साथ आसनों का अभ्यास किया जाय तो आसन तत्काल अपना फल दिखलाते हैं। इन्हीं विचारो से प्रेरित हो कर मैंने यह पुस्तक लिखी है। पुस्तक बहुत बड़ी नहीं है किन्तु सक्षेप में ही इस बात का प्रयत्न किया गया है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी आवश्यक बातों की जानकारी हो जाय जिससे आसनों के अनभ्यास से भी मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ रख सके और यदि जानकारी के साथ आसनों का भी अभ्यास करे तो क्या कहना। एक एक मिल कर ग्यारह और सोने में सोहागा की बात दिखलाई देने लगे।

पुस्तक में पहले जो कुछ शरीर के विषय में लिखा गया है उसके पढ़ने और उसके बाद आसनों के सम्बन्ध में पढ़ने से यह भलीभाँति ज्ञात हो जाता है कि अन्य व्यायामों तथा उपचारों की अपेक्षा आसन मनुष्य के लिये अधिक उपयोगी हैं।

यह पुस्तक स्त्री पुरुषों के लिये समान उपयोगी है। पुरुषों के समान स्त्रियों को भी आसनों का अभ्यास करना चाहिये स्वास्थ्य और निरोग के अलावा आसनों से स्त्रियों का प्रसूति के समय का कष्ट भी दूर हो जाता है। किन्तु स्त्रियो को सब

सचित्र

स् ास्थ्य ौर ो

पर भारत-प्रसिद्ध विद्वानों की सम्मतियाँ पढ़िए और देखिये कि वे पुस्तक को कितना उपयोगी बतलाते हैं—

"पुस्तक सभी पुरुष स्त्रियों के लिये बहुत उपयोगी है। विशेषकर विद्यार्थियों, नवयुवकों और नवयुवतियों के लिये अधिक से अधिक लाभकारी है, इसीलिये उनको इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये। पुस्तक संग्रह करने योग्य है।"

—पूज्यपाद महात्मा नारायण स्वामी

"अपने ढङ्ग की नवीन रचना है। इस विषय की इस समय जितनी भी पुस्तकें प्राप्त हैं, उनमें मेरे विचार से यह, अनूठी है।"

—आनन्दभिक्षु सरस्वती।

"इस स्वास्थ्य और योगासन पुस्तक के विषय का प्रतिपादन बड़े रोचक, सुगम और सरल ढङ्ग से किया गया है। शरीर की रचना और आसनों की विधि समझाने के लिये पचासों चित्र दिये गये हैं।"

—घासीराम एम० ए०, एल एल० बी० एडवोकेट, मेरठ।

"पुस्तक न केवल नवीन संतति और किशोरावस्था वाले विद्यार्थियों के लिये ही उपयोगी है, अपितु वृद्धावस्थापन्न पुरुषों और स्त्रियों के लिये भी, जो अपनी अनियमितताओं और त्रुटियों के कारण अपनी अमूल्य सम्पत्ति—स्वास्थ्य को नष्ट कर चुके हैं—एक बड़े सहायक का काम देनेवाली है।"

—गुरुकुल-वृन्दावन के आचार्य श्री० बृहस्पति वेदवाचस्पति।

पता—साहित्य-निकेतन, दारागंज, प्रयाग।

प्रकाशक का वक्तव्य

किन्तु इस बात से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि स्वास्थ्य और योगासन के सम्बन्ध में जितनी पुस्तके इस समय हिन्दी-संसार में प्रकाशित हैं। उन सब से अधिक लोगों ने इस सचित्र स्वास्थ्य और योगासन को अपनाया और इससे लाभ उठाया।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा का इसे श्रेष्ठ पुस्तकों में गिनना, अखिल भारतवर्षीय साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में तथा गवर्नमेंट के शिक्षा विभाग द्वारा पारितोषिक और पुस्तकालयों के लिये इसका स्वीकृत होना, साथ ही अनेक उद्‌भट विद्वानों, समाचार पत्रों, और पुस्तक से लाभ उठाये हुओं की सुसम्मतियों और सब के ऊपर पुस्तक की बिक्री ही पुस्तक की उत्तमता और उसकी उपयोगिता के पर्याप्त प्रमाण है। अधिक लिखना व्यर्थ है।

पुस्तक की उपयोगिता को ध्यान में रखते हुये नये संस्करण में लेखक-द्वारा कितनी ही उपयोगी नई २ बाते बढ़ा दी गई हैं जिससे इसकी उपयेगिता और भी बढ़ गई है तथा पुस्तक सर्वाङ्ग पूर्ण हो गई है।

आशा है हिन्दी के प्रेमी पाठक तथा आरोग्य स्वास्थ्य के इच्छुक स्त्री पुरुष बालक वृद्ध जवान सभी पुस्तक को अधिक से अधिक अपनाते हुए घर घर इसका प्रचार करेंगे।

—— रामकली देवी

नये संस्करण पर—

प्रति वर्ष ही सचित्र स्वास्थ्य और योगासन पुस्तक का नया संस्करण होना देख कर मैं अपने परिश्रम को सफल समझता हुआ प्रेमी पाठकों को धन्यवाद देता हूँ।

पुस्तक में बतलाये हुए साधनों के अनुसार चलकर आरोग्यता-प्राप्त महानुभावों का, उनके सैकड़ों प्रशंसा पत्रो और बड़े विद्वानों एव समाचार पत्रों का उनकी श्रेष्ठ सम्मतियों के लिए भी आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक की उत्तमता सिद्ध करते हुए मेरे उत्साह को बढ़ाया है और स्वास्थ्य पर अन्य पुस्तके लिखने का आग्रह किया है।

पाठकों की इच्छानुसार नये संस्करण से पुस्तक मे कितने ही अन्य उपयोगी विषय बढ़ा दिये गये हैं, मैं समझता हूँ इससे पुस्तक पहले की अपेक्षा अधिक लाभकारी सिद्ध होगी।

पाठक पूर्व की भाँति इस संस्करण पर भी अपनी सम्म-तियाँ भेजने की अनुग्रह करे ताकि आगे के सस्करण और भी उत्तम हों।

विद्वानों, मित्रों एवं इस पुस्तक द्वारा आरोग्यता-प्राप्त सज्जनों के विशेष आग्रह से उत्साहित होकर मैंने सचित्र स्वास्थ्य और प्राणायाम नामक अपूर्व पुस्तक लिखी है जिसमें प्राणायाम की उपयोगी और उसके द्वारा आमरण स्वास्थ्य नीरोग्य रहने की सरल विधियाँ बताई गई हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि स्वास्थ्य योगासन की तरह स्वास्थ्य और प्राणायाम भी पाठकों को विशेप पसन्द आवेगी।

—विद्याभास्कर सुकुल

आसन न करने चाहिये, खास कर वे जिनमें पैर की एँड़ी गुदा और योनि के बीच में लगानी पड़ती है। गर्भावस्था मे लगभग कोई आसन न करना चाहिये। जैसे—आसन नम्बर ६, १०, १५, २१, २५, २९, ३१, ३५, करने ही न चाहिये। गर्भावस्था में आसन नं० ११, १८, १९, २३, २६ किये जा सकते हैं किन्तु सात महीने बाद सभी आसन छोड़ देने चाहिए। हाँ शवासन हमेशा किया जा सकता है। यों तो आसन बहुत हैं किन्तु विस्तार भय से अधिक उपयोगी ही आसन दिये गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में आसनों का कोई खास क्रम न रख कर उपयोगिता के साथ साथ सरलता का ध्यान रखते हुये क्रम दे दिया है। आसनों के करने में जल्दी न करनी चाहिये। सभी आसन मन्द वेग सावधानी और अपनी प्रकृति व बलाबल को विचार कर, विधि पढ़ कर व चित्र देख-कर करना चाहिये। सब को सभी आसन करने आवश्यक नहीं। जिसको जो आसन उपयोगी हों उसे वे ही करने चाहिये।

आवश्यकतानुसार कुछ अन्य क्रियाओं जैसे नेति, वस्ति, ज्ञान-मुद्रा, योग मुद्रा, कंठबंध, उड्डीयान, मर्दन आदि के साथ आसन किये जायँ तो बहुत जल्द और विशेष लाभ पहुँचाते हैं। एक टोंटीदार बर्त्तन (गड़ुआ, कमण्डलु आदि) में आधा सेर जल भर के जो अधिक ठंडा न हो, उसे एक नाक में डाले और दूसरी से निकाल दे। इस समय साँस मुँह से ले और सिर एक ओर को थोड़ा झुका ले, इसे नेति कहते हैं।

पद्मासन में होकर दायां हाथ पीठ पर ले जाकर, एक दूसरे का पहुँचा पकड़ कर, कमर से झुककर जमीन में सिर को लगाने का नाम योग मुद्रा है। इससे साधना में ध्यान जमता है।

बैठकर या खड़े होकर शरीर को बिलकुल सीधा रखके ठोढ़ी को गले की गाँठ के नीचें खाली सी जगह में जो जोर से गड़ाना और दृष्टि सामने रखना इसी प्रकार सिर को पीछे ले जाने का नाम कंठबंध है। कंठबंध से गले के विकार नष्ट होने के साथ बुद्धि तीव्र होती और स्मरण शक्ति बढ़ती है।

हाथ घुटनों पर फैलाकर पञ्जा भी खोल दे फिर तर्जनी अँगुली को उठाकर अँगूठे के बीच में लगावे इस तरह अँगूठे और तर्जनी का एक गोलाकार घेरा सा बना ले। इसे ज्ञान-मुद्रा कहते हैं। ज्ञानमुद्रा से ध्यान जमता बुद्धि तीव्र होती है।

पद्मासन में बैठकर दोनों हाथों को घुटनों पर जमाकर सिर को पेट की ओर झुकाकर पीठ को कुछ पीछे फेंकते हुए पीठ और पेट के स्नायुओं को सिकोड़ कर पूरी तौर से साँस छोड़ देना फिर हाथों पर बोझ देकर पेट को तोंदी के नीचे से लेकर जोर से ऊपर की ओर ऐसा खींचना कि पेट ऊपर पसलियों में घुस जाय। इसे उड्डीयान कहते हैं। इसे बड़ी सावधानी से एक मिनट तक किया जाय। इससे पेट की सब व्याधि मे दूर होती और आँते साफ होकर निर्मल हो जाती हैं।

अन्त मे निवेदन है कि साधक आसनों के करने से पहले आवश्यक निवेदन को ध्यानपूर्वक पढ़ ले। यदि लिखित विधियो के अनुसार चित्र देखकर जानकारी से आसनों का अभ्यास किया गया और स्वास्थ्य पर ध्यान दिया गया तो साधक को पूर्ण लाभ होगा, साथ ही लेखक भी सफल-परिश्रम होगा।

—लेखक

स्वास्थ्य और योगासन
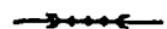
१—हमारा शरीर

जब हम अपने शरीर को टटोलते हैं तो इसे कहीं कड़ा और कहीं मुलायम पाते हैं। बात यह है कि जिस प्रकार किसी मकान को ठीक खड़ा रखने के लिये लोहे, पत्थर या ईंटों के खम्भे लगाने पड़ते हैं उसी प्रकार यह गतिमान शरीर भी अवलम्बित है। इसके भीतर जो कड़ी वस्तु मालूम होती है वह है हड्डी या अस्थि। हड्डियों का एक ढाँचा पूरे शरीर में मौजूद है जिसके सहारे त्वचा मांस मज्जा रक्त युक्त शरीर सधा हुआ है। यदि अस्थि-समूह न हो तो हमारा शरीर गति रहित एक लोथड़ा (ढेर) सा रह जाय। तब हम कुछ भी न कर सके।

अस्थि-समूह का ढांचा बहुत कड़ा बना हुआ है। यद्यपि हड्डी के सब टुकड़े अलग अलग हैं तथापि वे इस तरह जुड़े हुए हैं कि यदि कोई भारी चोट न पहुँचे तो

जीवन पर्यन्त सुरक्षित और काम देते रहें। ये हड्डियाँ कहीं तो डब्बे का काम देती हैं और कहीं केवल शरीर-भित्ति के खम्भो का। फिर इनका जुड़ाव भी ऐसा है कि हमें अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग की चालन क्रिया में इनसे कोई बाधा नहीं पहुँचती। ये हड्डियाँ जन्म के समय अत्यन्त मुलायम होती हैं किन्तु प्रौढ़ावस्था पाकर कठोर हो जाती हैं। उस समय इनकी तादाद भी अधिक होती है किन्तु धीरे धीरे ये आपस में मिलती जाती हैं और प्रौढ़ावस्था में तादाद घट जाती है। इस प्रकार अस्थि के तीन मुख्य कार्य हुये।

(१) शरीर में दृढता लाना।
(२) कोमल अङ्गों को सहारा देना।
(३) शरीर को गतिमान रखना।

प्रौढ़ावस्था में स्त्री और पुरुष में सब मिलाकर दो सौ छै हड्डियाँ रह जाती हैं। जिनका विभाग इस प्रकार किया जा सकता है—

सिर—जो २२ हड्डियों से बना है। जिनमें ४ हड्डियाँ केवल मुँह को बनाती हैं। बाकी ८ से मिलकर एक डब्बा सा बनता है जिसमें मस्तिष्क का भेजा, नाड़ी-चक्र व प्रधान इन्द्रियों का केन्द्र सुरक्षित रहता है।

मांस ही उसे सुन्दर और सुडौल बना देता है। इसी के सहारे शरीर में भिन्न भिन्न प्रकार की गतियाँ हुआ करती हैं। शरीर में मांस की गतियाँ दो प्रकार की हैं। (१) जो हमारी इच्छा के आधीन हैं। यदि हम पैर हिलाना चाहें तो हिलावे न चाहे तो बन्द करदे। यह हुई इच्छाधीन मांस-गति। (२) जो पूरी तरह स्वाधीन है, जिस पर हमारी इच्छा अनिच्छा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जैसे हृदय की धड़कन। इस गति को हम बन्द भी करना चाहें तो नहीं हो सकती। यह हुई स्वाधीन मांस-गति।

मांस पेशियाँ—मांस के सूक्ष्म तन्तुओं से बनी होती हैं। इनका एक सिरा हड्डी के एक सिरे पर, दूसरा—दूसरी हड्डी के सिरे पर होता है। मांस पेशियों का पोषण रक्त द्वारा होता है इसीलिये रक्त (खून) की तरह मांस भी लाल रंग का होता है।

ख़ून की रगें तीन तरह की होती हैं (१) जिनमें शुद्ध रक्त का प्रवाह हृदय से अंग प्रत्यङ्ग की ओर होता है—धमनियाँ कहलाती हैं। (२) जिनमें खराब रक्त बहता और वह दूषित होने से नीला हो जाता है—शिराएँ कहलाती हैं। (३) जो बहुत सूक्ष्म धमनियों से सम्बन्धित होती हैं जिनके द्वारा धमनी से शुद्ध रक्त पहुँचता है केशिकाएँ कहलाती हैं।

रक्त-सचालन का कार्य हृदय से होता है। हृदय—छाती की वाईं ओर स्तन के नीचे होता है। हृदय मे चार कोठरियाँ हैं। जिनमे से वाईं ओर की नीचे की कोठरी से शुद्ध रक्त धमनियो मे जाता है, धमनियों का अन्त केशिकाओं में होता है। केशिकाओं का अन्त शिराओं में होता है। शिराये अशुद्ध रक्त को हृदय को ओर ले जाकर उसकी दाहिनी ओर की ऊपर की कोठरी में खोलती हैं अब अशुद्ध रक्त दाहिनी ओर की नीचे की कोठरी से होकर फेफडे में जाता है। वहाँ से शुद्ध होकर फिर वाईं ओर की नीचे की कोठरी मे आता है। और फिर पूर्ववत सारे शरीर में चक्कर काटता है। इसे रक्त संस्थान कहते हैं।

हृदय हर वक्त धडकता रहता है। धड़कने में, सिकुड़ने पर वह शुद्ध रक्त को रगो मे ढकेलता है तब ये रगे तन जाती हैं और सिकुड़ने फैलने की क्रिया से रक्त आगे बढ़ता हुआ शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म कणों का पोषण करते हुये साथ ही मल को खीचते हुए हृदय को वापस आता है। शिराओं का रग इसी मल के विकार से नीला हो जाता है। हृदय की कोठरियों तक धमनियो के मार्ग में जगह २ ढकने हैं जो इस तरह खुलते मुँदते रहते हैं कि आगे बढ़ने वाला खून पीछे नही लौट सकता। रक्त उन चीजों से बना है जो भोजन के रूप में

आमाशय में जाती हैं जहां उनका पतला रस बन कर यकृत में पहुँच कर रक्त और पित्त बनता है। रक्त यकृत से एक नली द्वारा हृदय का शुद्ध कोठरी में पहुँचता है।

यकृत के भीतर चीनी के कण टूट टूट कर एक तरह का द्रव्य बनाते हैं जिससे पित्त बनता है। पित्त पीले रंग का होता है। आंतों में अन्न को सड़ने से बचाना, मलविसर्जन में सहायता देना, स्निग्ध को घुलाना भी इसका काम है। पित्त छोटी नलियों से बड़ी नली में पहुंच कर आमाशय में अन्न को पचाने में सहायता देता है। यदि कभी आमाशय की बड़ी नली में पित्त रुक जाता है तो वह रक्त में मिल जाता-है जिससे कमल रोग हो जाता है।

यकृत छाती की हड्डी के नीचे दाहिनी ओर होता है। इसके बाईं ओर आमाशय होता है। यकृत का रंग गहरा कत्थई होता है। जब यह अपने साधारण रूप से बढ़ जाता है तो पसली के नीचे टटोलने से मालूम होता है। यकृत से ही पित्त निकल कर अँतड़ी में जाता है। पित्त की न्यूनाधिकता से भी बहुत से रोग होते हैं।

मुख से लेकर गुदा तक पोषण संस्थान है। इसके भी कई विभाग हैं:—

मुख—पोषण-संस्थानका पहला विभाग है। इसमें पोषण संस्थान में सिर्फ दांत जीभ और लार-ग्रन्थियाँ ही काम करती हैं।

दांत—दो तरह के होते हैं (१) दूध के (२) असली। दूध के दांत जो संख्या में २७ होते हैं, ११ वर्ष की उम्र तक गिर जाते हैं और असली दाँत निकल आते है जो ३२ की तादाद तक पहुंचते हैं। दाँतों का काम भोजन चवा कर उसे पतला कर देना है। भोजन जितना ही अधिक चवाया जायगा उतना ही अधिक जल्दी पचेगा।

जीभ—यह केवल मांस की होती है और मुँह के भीतर चारो ओर आसानी से हिलाई जा सकती है। इसका काम खाये हुए कौर को मुँह में चारों ओर घुमाना और उसे लीलने में सहायता देना होता है। जीभ मे जो खुरदुरापन होता है उससे स्वाद मिलना है। जीभ से ही बोलने में सहायता मिलती है।

लार—ग्रन्थियों के तीन जोड़ होते हैं जिनसे लार पैदा होकर मुँह में आती है और कौर में मिल कर उसे गीला, लस-लसा और जल्द पचने वाला बना देती है। एक जोड जीभ के नीचे दोनों ओर, दूसरा जबड़े के नीचे दोनों ओर, तीसरा कान के सामने गालों के ऊपर दोनों ओर होता है।

आमाशय—यह एक तरह की थैली है। भोजन जाकर इसी में जमा होता है और वहा रस बनना प्रारम्भ होता है। यह रस अन्न को पचाता है। अमाशय की थैली ऊपर चौड़ी नीचे पतली होती है। उसके नीचेवाले सिरे से छोटी बड़ी आतें शुरू होती हैं। इन्हीं के भीतर यकृत से बना हुआ पित्त और रस आता है जो छोटी नलियो द्वारा सोख कर और ख़ून में मिल कर शरीर का पोषण करता है।

क्लोम—यह एक गांठ है जो आमाशय के नीचे पीठ से लगी होती है। इसमे दो तरह के रस बनते हैं एक वह जो भोजन पचाता है। दूसरा वह जो शरीर में ज्यादा चीनी का बनना रोकता है। यदि क्लोम किसी तरह नष्ट या रोगी होजाता है तो मधुमेह रोग पैदा हो जाता है।

तिल्ली—बाईं ओर पसली की हड्डियों के नीचे होती है। इसका काम ख़ून को साफ़ करना और ख़ून में आये हुये विष को नष्ट करना है। ख़राबी हो जाने से कभी कभी यह बहुत बढ़ जाती है, तब औषधि की आवश्यकता होती है।

पाचन क्रिया—लीलने पर अन्न जब आमाशय में पहुँचता है तो वहा अम्लमय रस से मिलता है और आमाशय-थैली में एक तरह की गति होती है। फिर आमाशय से वह

स्नायु या नस नाडियाँ

पक्वाशय में जाता है तो इसमें पित्त और क्लोम रस मिलने से सफेद् लसी सी बनती है। यही अन्न पस होता है जिसे आँते यकृत में पहुँचाती हैं, उसीसे रक्तादि बन कर शरीर का पोपण होता है। खाये हुये पदार्थ को ऐसे रूप में बदल देना कि वह आसानी से ख़ून में मिल जावे और शरीर के तमाम भागों में पहुँच जावे और बचा हुआ खोफरा मल के रूप मे बाहर निकल आवे इसी का नाम पच जाना है।

शरीर मे मुख्य मुख्य भागों में मस्तिष्क, मूत्र-वाहक, फेफड़े श्वासोच्छ्वास, रक्त, और हृदय के बाबत भी कुछ थोडा और हाल जान लेना आवश्यक है।

मस्तिष्क—शरीर का प्रधान सस्थान है क्योंकि मस्तिष्क ही शरीर पर शासन करता है। यह बहुत पेचदार है। इससे १२ जोड़ा रज्जुयें ऐसी निकलती हैं जो ज्ञान इन्द्रियो की ओर हैं जिससे ज्ञान इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। मस्तिष्क को स्वाध्याय आदि अच्छी बातों के द्वारा शुद्ध पवित्र रखना चाहिए। उसी की अच्छी बुरी आज्ञा को वे रज्जुये ज्ञानेन्द्रियो तक पहुचाती हैं और तब ज्ञानेन्द्रिया और कर्म इन्द्रिया काम करती हैं।

मूत्रवाहक—इसके तीन भाग हैं (१) गुरदा (२) मूत्रनाली (३) मूत्राशय। गुरदे का काम मूत्र बनाना है यह बहुत सी पतली २ घनी नालियों का बना होता है। इसमें रक्त से निक-

इसमे पदार्थ पहुँच कर मूत्र बनाते हैं। मूत्राशय पेड़ू में होता है। इसमें मूत्र जमा होता है। मूत्र नाली दो हैं जो गुरदों के नीचे भाग से निकल कर मूत्राशय से जुड़ी रहती हैं। इनके द्वारा मूत्र, मूत्राशय में पहुँचता है। मूत्र-मार्ग, मूत्राशय के नीचे के भाग से आरंभ होता है। एक नाली होती है। यह स्त्री पुरुष दोनों मे एक सी नही होती। पुरुष में इसकी लंबाई ७—८ इंच होती है जो लिंग में आकर मिलती है जिस से मूत्र और वीर्य दोनो निकलते हैं। वीर्य अलग बनता और जमा होता है।

फेफड़े—या फुफ्फुस अनेक छोटे छोटे अंश होते हैं जो आपस मे जुड़े रहते हैं। इसमें एक सूक्ष्म वायु-प्रणाली लगी होती है जिसे हवा-मन्दिर कहते हैं। ऐसे हजारों अंशो से मिलकर फेफडा बनता है। फेफडे दो होते हैं जो छाती में दोनों ओर रहते हैं।

श्वासोच्छ्वास—एक बार हवा नाक से खीची जाकर फेफड़ों मे घुसती है इसी को उच्छ्वास कहते हैं। जब हवा बाहर निकलती है तो उसे प्रश्वास कहते हैं। एकबार भीतर ले जाकर बाहर निकाल देने तक, एक बार सांस लेना कहाता है। जवान मनुष्य एक मिनट मे १८ वार तक सांस लेता है। बीमारी परिश्रम या घबराहट मे साँस जल्दी जल्दी चलने लगती है। सांस जहां तक हो धीरे धीरे और लम्बी लेनी चाहिए।

जल्दी साांस लेने से आयु कम हो जाती है। जो जीव जितनी जल्दी सांस लेते हैं उनकी आयु उतनी ही कम होती है। प्राचीन पुरुप इसीलिए प्राणायाम द्वारा अपनी आयु बहुत बढ़ा लेते थे। जब साँस भीतर प्रवेश करती है तो छाती फैलकर पहले से कुछ बड़ी हो जाती है। फेफड़ों में घुसकर दूपित हुए रक्त-विकार को ले लेती है साथ ही अपनी शुद्धता से रक्त को शुद्ध कर देती है फिर बाहर निकल आती है। इसीसे अच्छी हवा का लेना आवश्यक बताया गया है। गन्दी हवा जीवन को घटाने वाली होती है। श्वास बन्द हो जाने या गन्दी में दम घुट जाने से आदमी मर जाता है।

रक्त—वह चीज है जो चोट आदि लग जाने पर लाल रङ्ग की बाहर निकल आती है। रक्त से तमाम शरीर का पोपण होता है .खून का एक भाग वह भी है जो कभी कभी खाल छिल जाने पर पानी की शकल में निकलता है। .खून भोजन के रूप में खाई हुई अमाशय की चीजों में से बनता है।

हृदय—यह शरीर का एक प्रकार का ऐसा यन्त्र है जो बिना एक सेकण्ड रुके हुए हमेशा दूषित रक्त को लेकर फेफड़ों मे तथा फेफड़ों से आये हुए शुद्ध रक्त को लेकर नलियों द्वारा तमाम शरीर में पप किया करता है इसका आकार बन्द कमल सा है। दूपित खून आकर जब हृदय की

दाईं ओर की नीचे वाली कोठरी में जमा होता है, तो वहीं से एक धमनी फेफड़े की ओर जाती है, इसी धमनी द्वारा वह दूषित रक्त फेफड़ों में पहुँचता है वहाँ। सांस ली हुई शुद्ध वायु से शुद्ध हो कर चार बड़ी शिराओं द्वारा हृदय के बाईं ओर वाली कोठरी मे आता है। हृदय से खून उसीप्रकार अंगों में दौड़ता है जैसा पहले बताया जा चुका है एक जवान अरोग्य मनुष्य का हृदय एक मिनट मे ७२ से ८० वार तक धड़कता है। बाल्यावस्था और वृद्धावस्था मे अधिक धड़कता है। ज्वर, परिश्रम, घबड़ाहट आदि में इसकी गति तीव्र और भूख कमजोरी या कभी एकबारगी शोक या हर्ष में मन्द हो जाती है। कभी कभी सहसा धडकन बन्द हो जाती है और मनुष्य विना रोग के ही तत्काल मर जाता है।
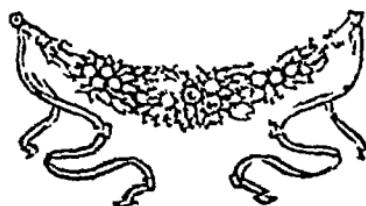
२—स्वास्थ्य

पूर्व पृष्ठों में मनुष्य रचना के सम्बन्ध में संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है, जिसके पढने से परमात्मा की अद्भुत कारीगर का पता लगता है। ऐसे अनुपम यंत्र को सँभाल कर रखना हमारा सब से बड़ा कर्त्तव्य है। अपनी स्थिति में शरीर के रखना इसी का नाम स्वस्थता या स्वास्थ्य है। और मोटी तरह से यों समझा जा सकता है—एक ऐसा यंत्र है जो अनेक कार्य कर सकता है। उस यत्र के तमाम पुर्जे ऐसे बनाये जा सकते हैं, जो अधिक समय तक दृढ़ रहकर कार्य कर सकें। अब हमारा प्रधान कर्त्तव्य है कि हम उस यत्र को दृढ, स्थायी बनाकर उससे पूरे कार्य निकाल लें। इसीप्रकार यह शरीर अपनी स्वतत्र स्थिति में जहाँ तक शक्तिशाली और उन्नत हो सकता हो, वहाँ तक इसे वैसा बनावें।

यदि शरीर रोगी हो तथा तब वह न तो शक्तिशली ही रहता है और न उन्नत ही हो पाता है। उसकी अपनी स्वतन्त्र स्थिति नष्ट हो जाती है। वह पराधीनता के, यानी औषधियों के बन्धन मे पड़ जाता है और तब उसका वास्तविक सुख जाता रहता है। जिस प्रकार लोहे ऐसे ठोस पदार्थ को मोरचा खा जाता है वैसे ही शरीर के शत्रुओं में इसका एक प्रबल शत्रु रोग है। यदि रोग-शत्रु के आक्रमण करने पर शरीर के

परमाणुओं का पराजय हुआ तो शरीर रोगी और नाश-पथ का पथिक हो जाता है। इसलिये रोग-शत्रु से शरीर का पराजय न हो ऐसा यत्न सदैव करना चाहिये।

मैं ऊपर ही बतला चुका हूँ कि रोगी हो जाने मनुष्य न केवल शरीर को ही बिगाड़ता है वल्कि अपने उन्नति मार्ग को ही बन्द कर देता है। रोगी से पुरुषार्थ हो नहीं सकता और पुरुषार्थ हीन व्यक्ति न अपना हित कर सकता है, न अपने समाज, जाति या देश का हित कर सकता है। वह तो धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों से पृथक निष्क्रिय हो जाता है। इसलिये मनुष्य को सदैव अपना शरीर विलकुल आरोग्य और स्वस्थ रखने का प्रयत्न करना चाहिये।

यह निश्चय है कि हम जब प्रकृति के नियमों के विरुद्ध चलते हैं, वास्तविकता से हटने लगते हैं तभी उसके विकार से शरीर रोग हो जाता है और हमारी स्वास्थता नष्ट हो जाती है। जब कभी हठात ऐसा हो जाय तो विना आलस्य किये उसे फौरन उपचार से फिर प्रकृति के अनुकूल और स्वस्थ बना लेना चाहिये।

औषधि प्रयोग, तरह २ के व्यायाम, प्राणायाम, आसन, भोजन की विधि, विद्युत्संचार, वर्ण जल प्रयोग, यन्त्र करण प्रयोग, स्वाध्याय, सत्संगति आदि शरीर-स्वास्थ्य और

मानसिक-स्वास्थ्य के साधन हैं, जिनके द्वारा हम अपने को स्वस्थ रख सकते हैं और रोग के आक्रमण करने पर उसे भी दूर हटा सकते हैं। किन्तु इन साधनों में उन्हीं का प्रयोग ठीक है जो सरल साध्य, प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक समय लभ्य, व्यय रहित, और सब के अनुकूल हों और किसी के पराधीन न बनाकर प्रकृति के अनुकूल ले जाने वाले हों। मेरा तात्पर्य व्यायाम, प्राणायाम, आसन से है। दूसरे साधनों में न तो उपर्युक्त सुविधायें ही हैं न वे शरीर को अपनी वास्तविक प्रकृति की ओर ले जाते हैं। जिनमें औषधि प्रयोग, भोजन आदि तो बिलकुल अपना दास बना लेते हैं जिनसे मनुष्य निकलने के बजाय और फँसता जाता है।

भोजन प्रयोग वही सुख कर और स्वास्थ्य कर है जो सादा और सात्विक हो। भाँति भाँति के मसालों और चटपटी चीजों से मिश्रित भोजन विकार पैदा करने वाला होता है।

अस्तु' प्रत्येक मनुष्य को अपनी उन्नति के लिये, परिवार समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिये स्वास्थ्य का ठीक रखना अत्यन्त आवश्यक है। स्वस्थ मनुष्य प्रसन्न चित्त, साहसी, बल शाली और कार्य में सफल, उतरनेवाला होता है। इसके विप रीत अस्वस्थ, दुखी, चिन्तित, आलसी, कमजोर, निष्क्रिय मनुष्य रहने वालों के बीच में, अपने समाज में भार स्वरूप होता है

३—रोग के रूप और कारण

"हमारा शरीर" में बताया गया है कि शरीर के भीतर का खुभरा या विकार मल है, जो शरीर के बाहर निकलता रहता है। "स्वास्थ्य" में भी विकार से विकृति बतलाई गई है। अस्तु, शरीर मे सञ्चित मल यदि स्वभाव द्वारा अपने स्वाभाविक रास्तों से ठीक समय पर न निकल कर देर सवेर भी निकल जाय तो ज्यादा कष्ट नहीं होता, किन्तु यदि मल रुक जाय तो अस्वभाविक मार्गों से औषधि या प्रकृति द्वारा निकालने का रुकाएकी पयत्न किया जाय तो शरीर में वह किसी रोग का रूप धारण कर लेता है। और जब शरीर के भीतरी यंत्रों के चालन में व्यतिक्रम पैदा हो जाता है या रुकावट से कमजोरी आ जाती है—जिसका परिणाम यहाँ तक पहुँचता है कि मल जिसका निकल जाना अत्यन्त आवश्यक है, अपने पूर्ण रूप में नहीं निकलता—तब प्रकृति उसे सजबूरन निकालती है। चाहे वह स्वाभाविक मार्गों से न निकल कर अस्वाभाविक मार्गों से निकले। प्रकृति की यह क्रिया ही रोग का रूप है। यह धीरे धीरे रोग के रूप में सचित मल को शरीर से निकाल कर ही चैन लेती है। प्रकृति के इसी उद्योग में मनुष्य को कभी कभी अपने प्राण तक गँवाने पड़ते हैं।

रोग चाहे जिस रूप में या दशा में हो, चाहे वे अन्तर्जन्य हों चाहे वाह्याघात-जन्य, सभी एक अप्रमित विकार के रूपों के भेद हैं। जन्म से मरण पर्यन्त शरीर में विकारों का होते रहना अनिवार्य है किन्तु जब वे बाहर न निकल कर शरीर में अपना घर बना लेते हैं तभी शरीर रोगी होता है। ये विकार जीव, जीवन या प्राण शक्ति द्वारा उत्पन्न होते रहते हैं जो हमारे शरीर यंत्रों को चलाने वाली है। शरीर के रोगी होने और अल्प मृत्यु हो जाने के तीन ही कारण हैं:—१—प्राण शक्ति का क्षय, नाड़ी दुर्वलता या वात दोष। २—रसों मे और खून में अप्रमित विकारों का पैदा होना या पित्त दोष। ३—मल और विषों का इकट्ठा हो जाना या कफ दोष। ये तीनों कारण या विकार हमारे शरीर मे इसलिये पैदा हो जाते हैं कि हम खाने पीने में, सास लेने में, पारिवारिक प्रसङ्गों और वैयक्तिक तथा सामाजिक आचार विचार काम काज में, रहन सहन में साथ ही मानसिक विचारों में प्रकृति-विरुद्ध या स्वभाव-विरुद्ध आचरण करने लगते हैं। इसी विरुद्धाचरण से अन्तर्बाह्य दोनों ओर से शरीर रोगी हो जाता है। वंशानुगत कारण से भी शरीर में रोग हो जाते हैं किन्तु उचित उपचारों से वे भी दूर हो सकते हैं। ऊपर शरीर में जहाँ रोग प्रगट दिखलाई देता है भीतर भी उसी जगह उसका उत्पत्ति-स्थान होगा। ऐसा न

समझना चाहिये। शरीर के भीतर उसके उत्पत्ति-स्थान दूसरे भी होते हैं। जैसा कि आगे के चित्र से प्रकट होता है।

१—जानु जोड़ व्यथा
२—अजीर्ण और कब्ज
३—गर्भाशयिक
४—कलाई
५—हथेली
६—तर्जनी
७—अजीर्ण से छाती को व्यथा
८—आमाशयिक अजीर्ण
९—दृष्टि दोष
१०—बद्ध कोष्ठ के कृमि
११—मूत्राशय दोष
१२—रक्त की कमी
१३—चक्षु व्यथा
१४—दंत रोग
१५—कान और अन्नमार्ग के रोग
[illegible]—योनिव्यथा
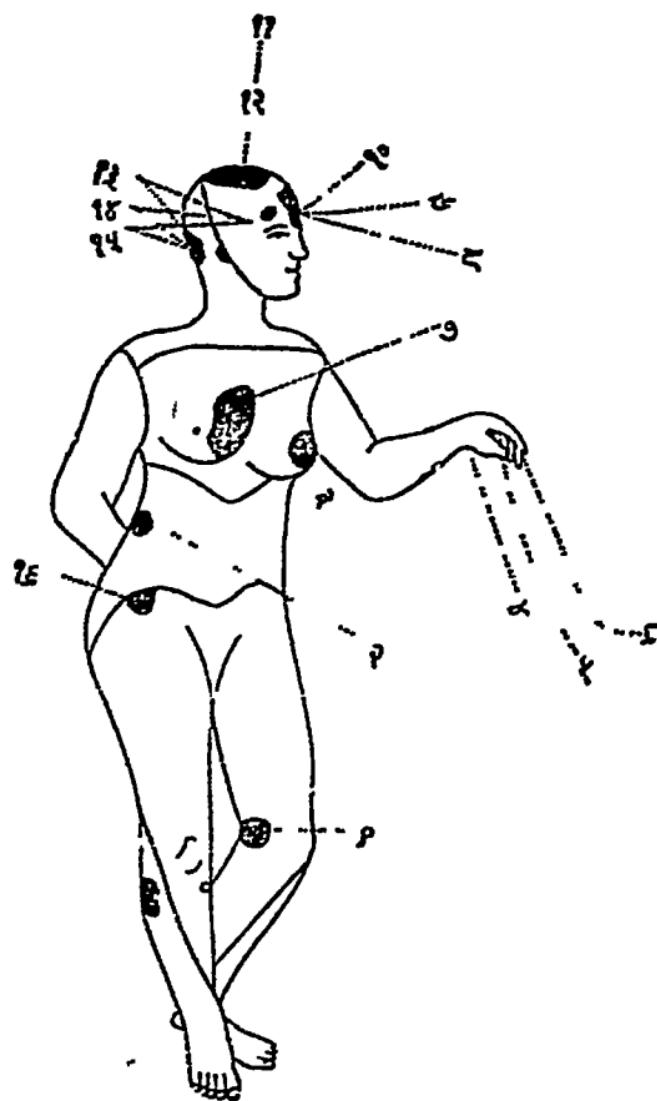
रोगों की उत्पत्ति के स्थान और उनका दूर व्यापी असर

४—ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य की महिमा अपार है। प्राचीन काल से अबतक छोटे बडे जितने भी सद्ग्रन्थ देखने में आये हैं, सब ने एक स्वर से ब्रह्मचर्य की महिमा के गीत गाये हैं। साधारण पुरुषों से लेकर ऋषि मुनियों तक ने इसकी महिमा का बखान करते हुए इसे मानव जीवन का आधारस्तम्भ माना है। वेदों में बड़े विस्तारपूर्वक ब्रह्मचर्य की महत्ता बतलाई है। ब्रह्मचर्य धारण करने वाले ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी के लिए तो संसार में कोई बात असम्भव बतलाई ही नही गई है। उसके अखण्ड तेज से अन-इच्छित फल उसके पीछे आप से आप दौड़े चले आते हैं। वेद मे बतलाया है "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" अर्थात् ब्रह्मचर्य के तप से देवताओं ने मृत्यु को जीता। कहा जाता है कि प्राणी की मृत्यु अपने हाथ मे नहीं और वह सब कुछ कर सकता है। किन्तु ब्रह्मचर्य का ऐसा प्रभाव है कि मृत्यु भी वश मे होजाती है। भारतवर्ष में तो प्राचीन काल से इसे प्रधानता दी गई है और इसके प्रभाव के परिणाम हमेशा देखने में आये हैं।

आमरण ब्रह्मचर्य धारण करने वाले श्री भीष्म पितामह का नाम क्या किसी से छिपा है। महाभारत-युद्ध के समय वे सब

से वृद्ध और सैकड़ों वर्ष की आयु वाले थे किन्तु फिर भी सेना-पति वे ही बनाये गये। क्यों? इसीलिए कि उस समय भी उनके सदृश कोई बलशाली न था। उनमें अखण्ड ब्रह्म-चर्य का तेज झलक रहा था। इसी प्रकार प्राचीन काल के सभी स्त्री पुरुष जिनकी वीरता का वर्णन हम इतिहासों में पढ़ते हैं सब ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। शरीर, आरोग्य और स्वस्थ रखने का प्रधान साधन ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट होकर शरीर को स्वस्थ रखने के जितने उपचार या प्रयत्न किये जायगे—सब व्यर्थ होंगे। वीर्य ही शरीर का राजा है। राजा के नाश में प्रजा सुरक्षित नहीं रह सकती। संसार में तीन ही प्रमुख बल हैं। एक शरीर बल, दूसरा ज्ञान बल, तीसरा मनो-बल। यद्यपि ये तीनों उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं किन्तु सब का आधार शरीर बल है। बिना उसके अन्य बलों की स्थिति नहीं हो सकती। और शरीर बल ब्रह्मचर्य से ही स्थिर रह सकता है।

अपने यहाँ शास्त्रों ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास इसप्रकार इस शरीर के समयानुसार चार आश्रम बतलाये हैं। इनमें सब से पहले ब्रह्मचर्य ही बतलाया है। सब आश्रमों का समय २५-२५ वर्ष रखा गया है। जो पुरुष ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक, मृत्युपर्यन्त) ब्रह्मचारी नहीं रह सकता वह जन्म से २५ वर्ष की आयु तक ही ब्रह्मचारी रहकर अपने शरीर को सर्वांग

औषधि प्रयोग के साथ साथ ब्रह्मचर्य स्खलित होता गया तो शक्ति सञ्चय कैसे हो पायगा। इसलिये स्वास्थ्य-सुख के कायम रखने का मूलमंत्र है ब्रह्मचर्य से रहना।

बहुत से बालक और नवयुवक अप्राकृतिक व्यभिचार, हस्तमैथुन, कुसंगति, गन्दे विचारों, स्त्रियों में अधिक बैठक, एकान्तविषय चिन्तन और अश्लील गन्दी पुस्तकों के पठन से अपने को बर्बाद कर देते हैं। जवानी होते होते वे पुरुषत्व हीन नपुंसक हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य का नाश करने वाले को संसार में कोई शक्ति जीवित नहीं रख सकती, ऐसा बड़े बडे विद्वानों और ऋषि मुनियों का तथा जो ब्रह्मचर्य के नाश से मृत्यु के शिकार हो चुके हैं उनका दृढ़ मत है।

यह जान लेना चाहिये कि पचते पचते अन्न से रस,रस से रक्त, रक्त से माँस वा मेदा, मेदा से हड्डी, हड्डी से मज्जा, और मज्जा से वीर्य बनता है। वीर्य का पाचन नहीं होता, यह वीर्य ही ओज रुप होता है जो काँच की तरह चिकना और सफ़ेद चमकने वाला होता है। यह तमाम शरीर में इसप्रकार मिदा हुआ रहता है जैसे दूध में मक्खन, ईख में रस, तिल में तेल। दूध, ईख और तिल का सार (रस) निकाल जाने से जैसी दशा उनकी रह जाती है उससे भी बदतर दशा वीर्य का नाश करने यानी ब्रह्मचर्य नष्ट कर देने से हो जाती है।

सुन्दर और तेजस्वी बनाताहुआ शेष जीवन आनन्द से व्यतीत कर सकता है। गृहस्थाश्रम में वर्णित विधि से स्त्री-प्रसङ्ग कर के भी पुरुष अपने में शक्ति कायम रख सकता है।

इस समय भारत वर्ष की अधोगति का कारण असमय वीर्य-नाश यानी ब्रह्मचर्य का नष्ट कर देना है। बाल विवाह आदि कुप्रथायें पूरी नाशकारी हैं क्योंकि वही मनुष्य के बनने का समय होता है, जब हम १२-१३ वर्ष मे ही अपनी संतानों का व्याह कर के उन्हें पतन का मार्ग बतला देते हैं। आजकल हम लोग बालकों के ब्रह्मचर्य पर जरा भी ध्यान नही देते, न खुद ही गृहस्थ विधि से ब्रह्मचारी रहते हैं। इसी से हम और हमारी सन्ताने कमजोर, निस्तेज, बीमार, आलसी, नपुंसक कर्तृत्वशक्तिहीन और दूसरों के सामने नतमस्तक होती हैं। न किसी अच्छे कार्य में मन लगता है, न उन्नति की ओर उत्साह ही होता है। हममें अधिकाश यह समझे रहते हैं कि हम औषधियों द्वारा अपनी शक्ति कायम रखे रहेगे पर वे यह नही सोचते कि औषधियाँ अपना प्रभाव तभी दिखावेंगी जब हम ब्रह्मचर्य से रहेगे।

बीमार को औषधि सेवन के साथ साथ परहेज की पूरी जरूरत होती है। ब्रह्मचर्य की शक्ति लाने वाली औषधियों के प्रयोग में ब्रह्मचर्य के परहेज की पूरी जरूरत है। क्योंकि यदि

औषधि प्रयोग के साथ साथ ब्रह्मचर्य स्खलित होता गया तो शक्ति सञ्चय कैसे हो पायगा। इसलिये स्वास्थ्य-सुख के कायम रखने का मूलमंत्र है ब्रह्मचर्य से रहना।

बहुत से बालक और नवयुवक अप्राकृतिक व्यभिचार, हस्तमैथुन, कुसंगति, गन्दे विचारों, स्त्रियों में अधिक बैठक, एकान्तविषय चिन्तन और अश्लील गन्दी पुस्तकों के पठन से अपने को बर्बाद कर देते हैं। जवानी होते होते वे पुरुषत्व हीन नपुंसक हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य का नाश करने वाले को संसार मे कोई शक्ति जीवित नहीं रख सकती, ऐसा बडे बडे विद्वानों और ऋषि मुनियों का तथा जो ब्रह्मचर्य के नाश मे मृत्यु के शिकार हो चुके हैं उनका दृढ़ मत है।

यह जान लेना चाहिये कि पचते पचते अन्न से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस वा मेदा, मेदा से हड्डी, हड्डी से मज्जा, और मज्जा से वीर्य बनता है। वीर्य का पाचन नहीं होता, यह वीर्य ही ओज रुप होता है जो कॉच की तरह चिकना और सफ़ेद चमकने वाला होता है। यह तमाम शरीर में इसप्रकार मिला हुआ रहता है जैसे दूध में मक्खन, ईख में रस, तिल में तेल। दूध, ईख और तिल का सार (रस) निकाल जाने से जैसी दशा उनकी रह जाती है उससे भी बदतर दशा वीर्य का नाश करने यानी ब्रह्मचर्य नष्ट कर देने मे हो जाती है।

एक दिन खाये हुए अन्न का वीर्य पूरे ३० दिन व लगभग ४ घंटे मे तयार होता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि ४ सेर भोजन से एक सेर रक्त और एक सेर रक्त से दो तोला वीर्य बनता है। यदि स्वस्थ पुरुष एक सेर भोजन रोज करे तो ४० दिन मे ४० सेर खायगा। इस तरह दो तोला वीर्य ४० दिन की कमाई है। अब समझ लेना चाहिये कि वीर्यनाश के द्वारा कितनी गाढ़ी कमाई, कितनी बुरी तरह से बर्बाद कर दी जाती है और इस तरह की बर्बादी का शरीर पर क्या असर पड़ेगा। इससे स्वास्थ्य-इच्छुक पुरुष को बड़े यत्न से ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिये।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है हिन्दू धर्म शास्त्रों में ब्रह्मचर्य के प्रकरण में तीन प्रकार के ब्रह्मचारी बतलाए गये हैं। और उनका समय निर्धारित किया गया है। ब्रह्मचर्य का जो सबसे न्यून समय है वह पचीस वर्ष की अवस्था तक का है। पचीस वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य धारण करने वाला वसु ब्रह्मचारी कहलाता है। दूसरा रुद्र ब्रह्मचारी कहलाता है जिसका समय छत्तीस वर्ष की अवस्था तक का है। तीसरा आदित्य ब्रह्मचारी कहलाता है जो अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करता है।

तो आपने देखा पूर्व समय में अपनी अपनी इच्छा और

परिस्थिति के अनुसार लोग ब्रह्मचर्य धारण करते थे और साधारण पचीस वर्ष तक तो सभी ब्रह्मचारी रहते थे इसके बाद गृहस्थाश्रम (जो वर्णाश्रम धर्म की दूसरी श्रेणी है) में प्रवेश करते थे और पाणिग्रहण संस्कार करके सन्तानोत्पत्ति करते थे। आपने ब्रह्मचर्य के समय में ही न्यूनाधिकता पाई होगी दूसरे आश्रमों (गृहस्थ, वानप्रस्थ) का समय अधिक कहीं नहीं बतलाया गया है। उनकी समयावधि केवल पचीस वर्ष की ही रखी गई है।

अपने लोगों में एक साधारण सी कहावत है "एक नारी सदा ब्रह्मचारी" अर्थात् एक अपनी ही स्त्री में वह भी शास्त्रानुकूल यथासमय गमन करने वाला पुरुष भी ब्रह्मचारी है, धर्मात्मा है।

आजकल लोग गृहस्थाश्रम. विषय भोग के लिये ही समझ लेते हैं और धर्माधर्म का विचार न करके वीर्य का नाश करते हुए अपनी नारी में पशुवत् रमण करते हैं। बल्कि यह समझना चाहिए कि मनुष्यों की अवस्था पशु से भी बदतर है क्योंकि पशु तो समय पर ही प्रसङ्ग करते हैं, दिन रात उसमें लिप्त नहीं रहते। पर मनुष्य तो समय असमय ऋतु अऋतु किसी भी बात का विचार न रखकर दिन रात चौबीसों घण्टे कभी शारीरिक क्रिया से, कभी मानसिक विचारों से कभी तादृश

प्रसगो से उसमें ही लिप्त रहता है।

आज कल वहुत कम ऐसे स्त्री पुरुष होगे शायद सैकड़ा पीछे पचीस हों जिनके सम्वन्ध में ऊपर लिखी लाइने घटित न होती हों।

वे यह भूल जाते हैं कि गृहस्थाश्रम केवल विपयानन्द के लिए नहीं है, शक्ति नाश के लिये नही है। वल्कि अन्य आश्रमों से अधिक संयम और शक्ति अक्षुरण रखने की आवश्यकता गृहस्थाश्रम में होती है। और आश्रमों मे तो केवल उसी आश्रम के धर्मो को साधना पड़ता है दूसरी चिन्ताएं या वाधाएँ नही सताती पर गृहस्थाश्रम में तो सभी आश्रमों को साधना पडता है, अनेक झंझट सामने रहते हैं, अनेक व.धाएँ घेरे रहती हैं जिनका सव का निवारण करके शक्ति-रक्षण करना पडता है। यदि शक्ति का ह्रास हो जायगा तो मनुष्य जीवन सग्राम मे ठहर नही सकता, पराजित हो जायगा और वह अपने गृहस्थ धर्म को वर्वाद कर देगा जैसा इस समय देखा जा रहा है।

शक्ति वीर्य रक्षा से ही संचित हो सकती और रक्षित रह सकती है। वीर्य नाश करके कोई चाहे कि मैं औषधियों द्वारा या अन्य उपायों द्वारा शक्ति रक्षण कर लूँ यह असम्भव है ऐसा कभी हो नही सकता। आज कल की भयकर दरिद्रता, शक्ति

जाती है। यह ठीक है कि उन्होंने कायिक विषय प्रसग कम कर दिया या छोड़ दिया किन्तु मन से तो नही छोड़ते। उनके मन तो अपवित्र हैं, मन में तो विषय विकार उत्पन्न होते रहते हैं। विषयों की वार्त्ताएँ, उसप्रकार की गन्दी पुस्तकों का पठन तो नहीं वन्द होता। फिर शक्ति कैसे कायम रह सकती है? इन वातों से वीर्य पतला पड़ जाता है और पानी होकर मलमूत्र द्वारा निकल जाता है। शरीरेन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, शक्ति क्षीण हो जाती है।

स्वप्नदोष क्या है? विषय चिन्तन का ही दुष्परिणाम है। वहुतेरे पुरुषों को विषय का समय या मौका नहीं मिलता। स्त्रियों को देखते ही वे उत्तेजित हो उठते हैं, गन्दी पुस्तकों या ऐसी ही वातचीत से उत्तेजना पैदा होती है और मन मे तरंगें उठती रहती हैं, विचार नही दवते, भावनाएँ उठती रहती हैं। वे ही निद्रावस्था में अपना प्रभाव दिखलाती हैं और स्वप्न दोष हो जाता है, सोते सोते वीर्य स्खलित हो जाता है।

यह समझ लेना चाहिए कि हस्तक्रिया या स्वप्नदोष द्वारा वीर्यनाश और भी अधिक हानिकर है इसलिये शरीर मे शक्ति कायम रखने के लिए ससार-क्षेत्र में सुखमय जीवन विताने के लिये इन सव ऊपर लिखी वुराइयों से स्वयं वचना
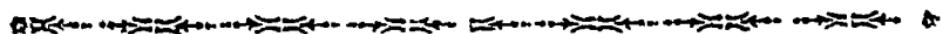
बीस चौबीस वर्ष की अवस्था में ही इस समय के जवान किसी काम के नहीं रह जाते, उनमें बुढ़ापा आजाता है। ब्रह्मचर्य धारण करने से पहले समय में वृद्धावस्था में भी युवा-शक्ति बराबर मौजूद रहती थी।

इसलिये प्रत्येक बालक वृद्ध जवान को ब्रह्मचर्य की रक्षा की ओर पूरा ध्यान देना चाहिये। वीर्य रक्षा के साथ ही शरीर रक्षा के अन्य उपाय और उपचार कारगर हो सकते हैं अन्यथा सब व्यर्थ हैं।

गई हुई वस्तु अपनी ठीक दशा को पहुँच जाय। तभी व्यायाम हो जाता है। शरीर के जो अंग कुछ कार्य नही कर रहे हैं उन्ही को पुष्ट बनाने और उनकी गति ठीक करने के लिये व्यायाम करना चाहिए। परिश्रम के द्वारा जो थके हुये अंग हैं यदि उन्ही से और व्यायाम किया जायगा तो उस अंग का क्षय होगा। मान लीजिए यदि हम पैरों से काफी चल आते हैं तो अब पैरो के और व्यायाम की आवश्यकता नही। आवश्यकता है दूसरे अगों के व्यायाम की। या ऐसे व्यायाम किये जायँ जिस से शरीर के तमाम अगों को कार्य करने पड़े ताकि सब का व्यायाम हो जाय। पहले हमारे देश मे शिक्षा के साथ २ स्वास्थ्य के लिये व्यायाम को ओर बहुत ध्यान दिया जाता था। अब दिया तो जाता है पर केवल नाममात्र को। पहले पुरुष विद्या सम्पन्न और शक्तिशाली दोनो होते थे पर अब अधिकतर देखा जाता है कि बलवान, शिक्षाहीन यानी दिमागी व्यायाम से रहित और विद्वान्, शारीरिक व्यायाम से रहित हैं। स्कूल कालेजों के पढ़े हुए लडकों को देखिए, नव्वे फी सदी लड़के दुबले-पतले, कमजोर स्वास्थ्यहीन मिलेगे इसके दो हो प्रधान कारण हैं एक व्यायाम का अभाव दूसरे ब्रह्मचर्य से न रहना।

अस्तु शरीर के अग प्रत्यगों को अपनी ठीक दशा मे व्यवस्थित रखने के लिये व्यायाम करना बहुत जरूरी है। हाँ,

नियमों को पालते हुये व्यायाम करना चाहिये क्योंकि अनियमित व्यायाम भी लाभ के स्थान में हानिकर होंगे। व्यायाम मे नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना विशेष लाभकारी होगा:—

(१) भोजन के पहले या पीछे तुरन्त ही व्यायाम न करना चाहिये। (२) व्यायाम का उत्तम समय प्रात' या सायंकाल है। (३) व्यायाम करते समय अपनी इच्छा शक्ति को पूरी तरह से शरीर के अगों की ओर लगाना चाहिये। (४) प्रारम्भ में ही अधिक व्यायाम न करना चाहिये, धीरे धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिए। प्रारम्भ में व्यायाम से शायद पहले शरीर में कुछ दर्द हो किन्तु उसकी परवाह न करना चाहिये। (५) बालक को ख़ूब दौड़ना घूपना खेलना कूदना ही उसका व्यायाम है उसे दंड बैठक की कोई ख़ास जरूरत नहीं। (६) तरुणावस्था में कठिन और अधिक व्यायाम करने की आवश्यकता है, बुढ़ापे में सरल और कम (७) कभी २ तेल की मालिश भी करनी चाहिये, मर्दन भी व्यायाम है। मर्दन के लिये कडु.वा तेल सर्वोत्तम होता है। (८) प्रातः स्नान के पश्चात व्यायाम किया जाय तो अधिक अच्छा है। (९) व्यायाम करने का स्थान ख़ूब स्वच्छ और खुला हुआ होना चाहिए। (१०) व्यायाम करने में अपने बलाबल का भा विचार रखना चाहिए।

व्यायाम करते रहने से मनुष्य में असमय ही कमजोरी,

सुस्ती, शिथिलता और बुढापा नही आता। अपितु वह अधिक काल तक पुरुषार्थयुक्त वना रहता है। इसलिये जिसप्रकार खाना पीना, टट्टी जाना पेशाव करना इत्यादि को आवश्यक समझा जाता है और किया जाता है उसी प्रकार व्यायाम को भी आवश्यक समझना और नियमित रूप से करना चाहिए।

आजकल क्या सदैव मनुष्य उदाहरण अधिक ढूढा करते हैं और सामने जो उदाहरण देखते हैं उसी का अनुकरण करने लगते हैं। यह वात किन्ही अशो तक ठीक भी है।

व्यायाम के सम्वन्ध में छानवीन करते हुये इस समय लोग प्रो० राममूर्ति, गामा, सैण्डो आदि के उदाहरण सामने रखते हैं और अपने को स्वस्थ तथा हृष्ट पुष्ट वनाने के लिये उन्ही के उपायो को खोजते और उनक मिल जाने पर उनके अनुसार चलने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे व्यायाम करने वालों में वहुतेरे लाभ भी उठाते हैं, वहुतेरे उनके प्रयोगों को ठीक ठीक न समझ सकने के कारण या करने की क्रियाओं में भूल के कारणादि से लाभ नही उठा पाते। कोई कोई तो लाभ के स्थान में हानि उठाते हैं। जैसा कि कहा गया है।

देखा देखी साधै जोग
छीजै काया वाढ़ै रोग

अस्तु, उक्त वीर शिरोमणियों के व्यायाम के सम्वन्ध में

भी कुछ लिखा जाता है।

प्रो० राममूर्ति को ही ले लीजिए उनके प्रसिद्ध खेल तीन हैं छाती पर रखकर पत्थर तोड़ना, जंजीर तोड़ना, और मोटर रोकना।

इन तीनों खेलों में शारीरिक शक्ति के साथ साथ अभ्यास तथा विधियों की आवश्यकता है। छाती पर रखकर पत्थर तुड़वाने की इच्छा रखने वाले को सब से प्रथम प्राणायाम के अभ्यास की जरूरत है कम से कम शनैः शनैः के अभ्यास से इतना अभ्यास बढ़ा लेना चाहिए कि पाँच मिनट तक श्वास को रोक सके। यदि प्राणायाम के अभ्यास के बिना ही कोई पत्थर रख कर तुड़वाने का दुस्साहस करता है तो समझना चाहिए कि वह अपने आप मृत्यु के मुख में घुसता है।

प्राणायाम के अभ्यास के साथ साथ प्रारम्भ में भारी नहीं छोटे छोटे पत्थर के टुकड़े तुड़वाने चाहिए और धीरे धीरे वजनी पत्थर रखने का अभ्यास करते जाना चाहिए। पत्थर रखते समय छाती पर तथा कमर और गर्दन के नीचे गुद गुदा गद्दा या कोई ऐसी ही कपड़ा रख लेना चाहिए जिससे उन पर चोट न पहुँचे दूसरे गर्दन छाती के बराबर तक उठी रहे। छाती पर पत्थर और पत्थर के ऊपर पत्थर रख कर तुड़वाने से छाती पर ठेस बहुत कम लगती है। उसका वही असर

होता है जिस तरह आप पत्थर का एक टुकड़ा हाथ में ले और उसके ऊपर दूसरा टुकड़ा रख कर उसे तोड़ें तो हाथ पर किसी तरह का जर्व नही आता।

मोटर रोकने में भी अभ्यास की जरूरत है अभ्यास करने में मोटर को एक साथ ही पूरी ताकत से न चलवा देना चाहिए। धीरे धीरे चलने के वेग को बढ़ाना चाहिए। इसके अभ्यास के लिये प्रारम्भ में रस्साकशी या खूँटा गाड़ कर भी काम लिया जा सकता है या वैलगाड़ी आदि रोक कर भी अभ्यास किया जा सकता है। मोटर रोकते समय भी श्वास साधने की आवश्यकता है, बीच में छोड़ न न देना चाहिये नहीं तो हानि हो सकती है। मोटर रोकते समय या अभ्यास करने में शरीर को पीछे की ओर झुका देना चाहिये। इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि घुटने मुड़ने न पावे और गर्दन भी तनी रहे।

जंजीर तोड़ने में श्वास बीच बीच में खीची और निकाली जा सकती है। तोड़ने वाली जंजीर को पीठ पर डालकर तोड़ने मे पीठ की ओर आगे की ओर से अधिक तंग रखनी चाहिये क्योकि पीठ की ओर से ही अधिक जोर लगाना होगा। तोड़ते समय कधों को कुछ पीठ की ओर मोड़कर झटका देना चाहिये।

किन्तु इन सब अभ्यासों में कमजोर आदमी को तो हाथ भी न लगाना चाहिये क्योंकि बड़ा खतरा है इनके लिये पहले

ब्रह्मचर्य और व्यायाम द्वारा शरीर को ख़ूब हृष्ट-पुष्ट बना लेने की जरूरत है।

शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिये देशी डंड, बैठक, मुगदर घुमाना तथा कुश्ती आदि की प्रणाली बहुत अच्छी है। पर आजकल की सभ्यता के अनुसार सैंडों की प्रचलित की हुई डम्बल कसरत का भी बहुत रिवाज चल गया है। लाभ उससे भी बहुत होता है। मसल्स या माँस पेशिया ख़ूब गठ जाती और मजबूत हो जाती हैं। दूसरे इस समय के पश्चिमीय फ़ैशन के अनुसार डम्बल कसरत फ़ैशन-रक्षा मे भी सहायक होती है।

डम्बल एक तो साधारण लोहे के होते हैं दूसरे वे होते हैं जिनमें बीच में स्प्रिङ्ग लगी रहती है। मुट्ठियों में डम्बल को भर कर स्प्रिङ्ग दबाने से तमाम हाथों पर जोर पड़ता है। और उन में ताकत आती है। डम्बल की कसरत को बहुत से तो केवल खेल समझते हैं और खेल समझने वालों को उससे लाभ भी वैसा ही होता है डम्बल की कसरत में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, इससे अधिक लाभ होता है।

डम्बल की कसरत करते समय साँस नाक से धीरे २ और लम्बी खींचना चाहिये। मुख से या एक दम कभी साँस

न लेना चाहिये।

डम्बल कसरत से पूर्व शरीर पर अच्छी तरह तेल की मालिस कर ली जाय तो बहुत लाभ होता है।

डम्बल करते समय शरीर कड़ा रखना चाहिये और जिस भाग से कसरत की जा रही है उसे तो इतना कड़ा कर देना चाहिये कि कांपने लगे और थोड़ी ही देर में पसीना आजाय

कसरत करते समय डम्बल की स्प्रिङ्ग को धीरे धीरे पूरी तरह से मिला देने का प्रयत्न करना चाहिये और मिला देने पर थोड़ी देर वैसे ही मिलाए हुए ठहरे रहना चाहिये छोड़ न देना चाहिये। छोड़ने में धीरे धीरे छोड़ना चाहिये।

कसरत करने के बाद शान्ति होने और हृदय स्वस्थ हो जाने पर अच्छी तरह स्नान कर डालना चाहिये। स्नान उस समय खुली हवा में न करना चाहिये।

डम्बलों की कसरत की अनेक प्रणालियाँ हैं जिन में मुख्य मुख्य दो चार छै इस प्रकार हैं:—

तनकर सीधे खड़े होकर दोनों हाथ नीचे जंघों से मिलादे हाथों में डम्बल रहे फिर स्प्रिंग को दबाते हुये दोनों हाथ कोहनियों से मोड़ कर कन्धे तक लावे और फिर नीचें ले जाय इसी तरह कई बार करे इसी को ऐसे भी किया जाता है कि एक हाथ जघे से लगा रहने दे केवल एक ही हाथ कन्धे तक

ले जाय जब उसे नीचा करे तब दूसरा ऊपर ले जाय उसी तरह वारी वारो से एक हाथ ऊपर एक नीचे करे। इस क्रिया में यह भी होता है कि हथेलियों को आगे घुमाकर हाथ चलाये जाते हैं दूसरी प्रकार में हथेलियों को पीछे की ओर मोड़ करके भो चलाये जाते हैं।

हाथ सीधे अगल बगल फैलादो फिर स्प्रिंग को दबाते हुये दोनों हाथों को कोहनियों से मोड़ कर कन्धों से छुआओ। इसी को ऐसे भी किया जाता है कि एक हाथ सीधा रहे और दूसरा मोड़ कर कन्धे तक लाया जावे जब वह सीधा किया जावे तो सीधावाला मोड़ा जावे पहले की भाँति एक हाथ मुड़े और दूसरा खुले। इसमें भी हथेलियाँ आगे पीछे घुमा ली जाती हैं।

हाथों को सामने आगे की ओर सीधा तानो और पूर्व की भाँति दोनों हाथों को या वारी वारी से एक एक हाथ को कोह-नियों से मोड़ते हुए लाकर कन्धों से मिलाओ। हथेलियाँ ऊपर नीचे की ओर घुमा कर यह क्रिया भी की जाती है।

सीधे तन कर खड़े होकर हाथों को नीचे की ओर जंघों से मिलाओ फिर दोनों हाथ धीरे धीरे स्प्रिंग दबाते हुए सीधे आगे को ओर तान दो इसमें ध्यान रहे कि कोहनियाँ न मुड़ें। इसे भो वारी वारी से एक हाथ नीचे गिराकर एक तान कर

किया जाता है।

डम्बल कसरत की कुछ विधियाँ बैठ कर और लेट कर भी की जाती हैं जिनका फल डंड बैठक के समान होता है। डम्बल कसरत में मसल्स बहुत अच्छे गठ जाते हैं।

सारांश यह कि व्यायाम शरीर को हृष्ट पुष्ट बनाने वाला है अपनी अपनी रुचि के अनुसार देशी व्यायाम या सैंडो व्यायाम किया जा सकता है। देशी व्यायाम में ऐसे साधनों की आवश्यकता नही पड़ती जिन में खर्च होता हो। दूसरे देशी व्यायाम सर्वत्र सुलभ होते हैं पर व्यायाम करने में अपने बलाबल का विचार रखना चाहिये दूसरे एक ही अंग से अधिक व्यायाम न करना चाहिये तथा वैसे भी बहुत अधिक व्यायाम न करना चाहिये।

६—रोगों के उपचार

रोगों के उपचार (इलाज) के विषय में—जिन पर मेरा दृढ़ विश्वास है—आसन हैं जिनका वर्णन आगे किया गया है। तथापि यहाँ कुछ उपचारों का उल्लेख कर देना किसी प्रकार लाभकारी ही है। साधारण और सब से स्वाभाविक उपचार जो श्री रामदास जी गौड ने अपनी एक पुस्तक में दिये हैं उनका संक्षेप में यहाँ दे देना अच्छा होगा वे नीचे लिखे हैं:—

(१) जीवन को स्वभाव के अनुकूल बनाना या अपने रहन सहन और परिस्थिति को परिमित, प्रकृत अवस्था में इन उपायों से रखना—

(क)—सुबोध वैयक्तिक शिक्षा द्वारा मानसिक विकास।

(ख)—चित्त की एकाग्रता, संकल्प दृढ़ता व आत्म संयम का अभ्यास।

(ग)—विचार में, साँस में, अहार विहार में, कर्म चेष्टा में, स्वप्न में एवं सामाजिक नैतिक व पारिवारिक आचार में स्वाभाविक रीति से रहना। "अति" से सदैव बचना।

(घ)—मालिश, उचित शल्य चिकित्सा व यन्त्रों के व्यवहार से बाहरी चोट या अन्य बाह्य-दोषों का

निराकरण ।

(२) प्राण-शक्ति का मित व्यवहार-नीचे लिखे प्रकारों से:—

(क) प्राण- शक्ति के व्यय व क्षय के द्वारों को रोकना ।

(ख)—ढंग से अग प्रत्यंग को आराम देना और निद्रा ।

(ग)—हित, मित और उचित अहार एवं मानसिक चिकित्सा तथा मन की सात्विकवृत्ति ।

(३) मल विसर्जन मे जिनमें हानिकारक विप भी हैं:—

(क)—भोजन और पान का ठीक ठीक समाहार और विहित रीति से उसका चुनाव ।

(ख)—उचिक लाभदायक व्रत उपवास ।

(ग)—जल चिकित्सा ।

(घ)—वायु और प्रकास से लाभ, उभय स्नान और घर्षण ।

(ङ)—अस्थि मांसपेशियों की मालिश तथा आनुषं-.गिक व्यायाम ।

(च)—प्राणायाम और आनुषगिक क्रियायें ।

(छ)—ऐसी औषधियों का प्रयोग जिनसे रक्त के शोधन और प्रमिती करण में सहायता मिले और शरीर को सुपाच्य रूप में आवश्यक लवणमय पदार्थ मिल जाँय ।

ऊपर लिखित रोगों के स्वाभाविक उपचारों का वर्णन किया गया। किन्तु किन्हीं अंशों में विशेष तौर से औषधियों द्वारा उपचार होते देखा गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य स्वभावतः उन बातों से तो नहीं हटना चाहता जिनसे भाँति भाँति के रोग और विकार उत्पन्न होते हैं बल्कि वह चाहता यह है कि मैं प्रकृति नियमों का व्यतिक्रम करके अपनी स्वेच्छानुसार रहूँ। यदि उसमें रोग बाधक हों तो उन्हें औषधियों से दबा दिया जाय। यह ठीक है कि औषधियों द्वारा रोग दब जाते हैं लेकिन यदि रोग उत्पत्ति के मूल (जड़) नष्ट न किये गये तो वे फिर पैदा हो जाते हैं। जिस प्रकार किसी पेड़ को ऊपर से काट देने से उसमें फिर और जोरों से किल्ले फूटते हैं। इसलिये प्रायः उपचार भी ऐसे करने चाहिए जो न केवल रोग को बल्कि उसके मूल कारण को नष्ट करने वाले हों।

एक बात और भी है। औषधि सेवन करने वाले यह कह सकते हैं कि जब कभी रोग फिर उभरेगा तो औषधि खालेंगे या औषधि सेवन बराबर करते ही रहेंगे। इस विषय में यह जान लेना चाहिए कि औषधि सेवन में न केवल द्रव्य का व्यय और शरीर को ही कष्ट होता है बल्कि निरन्तर औषधि सेवन आहार में परिणत हो जाता है तब उसका वह गुण अधिकांश में नष्ट हो जाता है। मैंने ऐसे मनुष्यों को देखा है जिन्होंने

पहले किसी औषधि का प्रयोग किया, उन्हें लाभ भी हुआ किन्तु उसे नित्य का आहार बना लेने से वह प्रभाव रहित हो गई। तब वे उससे अधिक तेज और प्रभावकारी औषधि तलाशने लगते हैं। इसीलिये रोगों में ऐसे ही उपचार करने चाहिये जिनका प्रभाव रुज-हर और स्थायी हो।

प्रत्येक व्यक्ति को, उपचारों को मित्र की दृष्टि से नहीं, उपेक्षा की दृष्टि से देखना चाहिये। जबतक शरीर उपचार करने को लाचार न हो जाय तब तक शौकिया किसी उपचार को अपनाना उचित नहीं। हाँ जो शरीर को स्वस्थ रखनेवाले स्वाभाविक उपचार हैं जैसे, आसन, व्यायाम, प्राणायाम इत्यादि इन को तो अपना मित्र समझते हुए अपनाना चाहिए। किन्तु जैसे बहुत से आदमियों को देखा गया है कि वे शौकिया औषधियाँ खाते हैं, ऐसी औषधियों से दूर रहना चाहिए।

७—स्वास्थ्य और मनोयोग

मैं पूर्व ही बतला चुका हूँ कि जब मनुष्य, शरीर बल ज्ञान बल और आत्म बल, तीनों बल प्राप्त कर लेता है तभी वह पूर्ण स्वस्थ कहलाता है। मनोयोग का ही रूपान्तर ज्ञान बल और आत्म बल है। कर्मेन्द्रियों द्वारा ब्रह्मचर्य रखने वाला और व्यायाम करनेवाला पुरुष भी मानसिक कमजोरी से अस्वस्थ हो जाता है। उस पर मन का प्रभाव पूरी तौर से पड़ता है। पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न होते हुए भी जब मनुष्य अपने किसी आत्मीय का मरण या कोई दुखद समाचार सुनता है तो उसके मन को इतनी व्यथा होती है जिसका प्रभाव तत्काल मुख पर झलकने लगता है और अल्प काल में ही शरीर की हालत कुछ से कुछ हो जाती है। कहा भी है—

चिता चिन्ता द्वयोर्मध्ये चिन्ता एव गरीयसी।
चिता दहति मृतानां तु चिन्ता जीवितामपि॥

अर्थात् चिता और चिन्ता दोनों में चिन्ता बड़ी है क्योंकि चिता तो मरे हुये को ही जलाती है परन्तु चिन्ता जीवित को भी जला देती है।

इसी तरह बाह्य रूप से अच्छा रह कर भी मनुष्य मन से विषय चिन्तन से अपने को निकम्मा कर लेता है।

मन के इस जबर्दस्त प्रभाव के ही कारण चिन्ता चिता से भी भयङ्कर मानी गई है। मनुष्य शक्ति रखते हुये भी अशक्त हो जाता है। भूखा होते हुये भी भूख रहित होजाता है खाया नहीं जाता। इस सब का कारण क्या है—मानसिक बल का ह्रास। चिन्ता का वास-स्थान मन है। अतएव मन में कभी किसी विकार या चिन्ता को उत्पन्न न होने देना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि खाली रहने से भी मन बुराइयों की ओर दौड़ा करता है इसलिए इसे कभी खाली न रहने देना चाहिए। यदि खाली भी रहे तो हमेशा उच्चविचारों का सृजन करना चाहिए ईश्वर भजन द्वारा मन की एकाग्रता तथा स्वाध्याय, सत्सगति, और सङ्कल्प-शक्ति की दृढ़ता आदि मन के व्यायाम हैं जिनसे मन स्वस्थ रहता और मानसिक शक्ति की उन्नति होती रहती है। फिर शारीरिक शक्ति के ह्रास का भय नहीं रहता।

बुरे विचारों से मन की विचार-शक्ति का भी ह्रास होजाता है। मन में उन्नत विचार उठते ही नहीं। और मानसिक व्यायाम से इच्छा शक्ति का विकास होता है शुभ या उन्नत विचार विकास पाते हैं। श्रीकृष्णजी ने कहा है कि पवित्र मन माँ बाप और गुरु से भी बढ़कर हितकारी है। मन ही मनुष्य को नरक से निकाल कर स्वर्ग के उच्च पद पर बैठा देता है।

सुख दुख का असली कारण मन ही है। यहाँ तक कहा

गया है कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो." अर्थात् मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष कारण मन ही है। संसार में सब से तीव्र गति मन की ही बतलाई गई है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को जीवन सुधार के लिये मनोयोग की ओर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस मन को बुराइयों की ओर से हठात् हटाना चाहिए। जिस तरह से सवार खराब रास्ते में न जाने के लिए घोड़े की लगाम को हठात खींचता है। जरा सी ढील में वह अपनी और घोड़े की दोनों की भारी हानि देखता है। वैसा ही हरएक को मन के विषय में समझना चाहिये।

ईश्वर-चिन्तन के समय ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे ईश्वर! मेरा मन शिव संकल्प वाला हो, इसमें सदैव अच्छे संकल्प उठें। बहुत से मनुष्यों के कार्य कर्मचेष्टा में प्रवृत्ति रहने पर सफल नहीं होवे इसका कारण यही है कि अन्यान्य इन्द्रियों के कार्य की ओर लगे रहते हुए भी मनोयोग उधर नहीं होता। प्रत्येक कार्य की सिद्धि में मनोयोग का उसमें होना अत्यन्त आवश्यक है। पूर्ण स्वस्थ की इच्छा रखने वाले को शुद्ध मानसिक व्यायाम की ओर जैसा कि ऊपर बताया गया है, पूरा ध्यान देना चाहिये। तभी वह शरीरबल ज्ञानबल और आत्मबल तीनों बलों से पूर्ण बलशाली हो सकता है।

८—योग

"योगश्चित्त वृत्ति निरोध." चित्त की वृत्तियों को चलायमान न होने देकर उन्हे रोकने स्थिर करने (अपने वश में रखने) का नाम ही योग है। इससे पूर्व वर्णित प्रकरण की क्रियायें योग की ही रूप हैं। बहुत से लोग लौकिक व्यवहारों में पडे हुए, दूकानदारों की तरह योग में समय देना व्यर्थ समझते हैं। वे कहते हैं इससे हमें प्रत्यक्ष तो कोई फल मिलता ही नही इतना समय कुछ पैदा करने में क्यों न लगावे। ऐसे लोग कभी यह विचार नही करते कि योग साधन लौकिक और पारलौकिक दोनों लाभों के लिए श्रेयस्कर है। उसको देन अप्रत्यक्ष है किन्तु उसमें (व्यर्थ समझा जाने वाला) दिया हुआ थोड़ा समय भी उस समय से कई गुना अधिक लाभ पहुँचाता है और मानव जीवन का एक क्रम बाँध देता है।

गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को जगह जगह योगी होने का उपदेश दिया है। योग साधन से सद्गुणों व प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव होता है। योग नाम है मिलान मेल या जोड़ का। योग साधन में मुख्य बात मन और शरीर की है, क्रियाओं से दोनो आपस में ऐस मिल जायँ कि मन और शरीर की इन्द्रियों के कार्यों में किसी प्रकार की विभिन्नता न हो

और दोनों ही का लक्ष्य उच्च हो। दोनों ही प्राण को साथ लेकर आत्मा के आधीन कार्य करें और आत्मा की शुद्ध प्रेरणा के वाहक हों, इसका विरोध न करें। बस, जहाँ ऐसा हुआ कि योग सफल होगया और इच्छित वस्तु की प्राप्ति होगई समझना चाहिए। शरीर के अन्दर मन और मन में आत्मा है। उच्च लक्ष्य की आवश्यकता इसीलिये है कि बिना उसके आत्म-कल्याण हो ही नहीं सकता क्योंकि मरणोपरान्त शरीर और मन के कार्य यहीं समाप्त होजाते हैं, आत्मा अपने स्थान पर नहीं पहुँच पाता अतएव लक्ष्य उच्च चाहिए।

योग से मनुष्य का चित्त शुद्ध हो जाता है। लौकिक कार्यों को करते हुए भी योगी पुरुष को चिन्ताएँ नहीं सतातीं। धीरे धीरे उसकी वृत्ति सुख दुख में, हानि लाभ में, हर्ष शोक में समान हो जाती है और पुरुष की जब ऐसी वृत्ति हो जाती है तो उसे कितनी शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हो जाती होगी इसका अनुमान विचार से कुछ कुछ किया जा सकता है।

बहुत से पुरुष योग को गृहस्थ धर्म से पृथक समझते हैं वे यह नहीं समझते कि गृहस्थ ही सच्चा योगी हो सकता है भगवान कृष्ण ने योगीश्वर कहला कर हमें यही शिक्षा दी है। जो लोग यह समझते हैं कि जङ्गल में रह कर गुफा में ही योग की साधना हो सकती है। एक हाथ उठाए रहने, एक पैर से

खड़े रहने, काँटों पर पड़े रहने, इन्द्रिय काट डालने या केवल राख शरीर पर मले रहने का नाम योग है और ऐसा करने वाले योगी या महात्मा हैं—वे गलती पर हैं, उनका विचार गलत है। ये बातें सृष्टि नियम के विरुद्ध हैं ये तो ईश्वर के नियमों की अवहेलना है। यह योग नहीं अपराध है। योग इससे बिलकुल भिन्न है। उसकी साधना के प्रकार भिन्न हैं जैसा कि ऊपर कहा गया है।

९—प्राणायाम

गति विधि से नाक के द्वारा गंभीर श्वास को खींच कर शरीर के भीतर लेजाना और उसे रोककर बाहर फेंकने की क्रिया का ही नाम प्राणायाम है। प्राण माने वायु आयाम माने रोकना। प्राणायाम योग की पहिली सीढी है। "इन्द्रियाणाहि दह्यन्ते दोषा प्राणस्य निग्रहात्' अर्थात् प्राणायाम से मन व इन्द्रियों के दोष भस्म हो जाते हैं।

वैसे तो प्राणायाम के अनेक प्रकार हैं जिन्हें करने के लिये किसी गुरू से सीखना चाहिए वर्ना अविधि प्राणायाम मे उल्टा हानि होती है, किन्तु इसके साधारण तीन अंग हैं। (१) पूरक (२) कुंभक (३) रेचक। नाक का दाहिना छेद अंगूठे से दबाकर बायें छेद में वायु खींचकर दोनों छेद बन्द कर देना पूरक प्राणायाम है। भीतर की वायु जहाँ तक हो सके रोकना कुंभक प्राणायाम है। भीतर रोकी हुई वायु को नाक का दाहिना छेद खोल कर और बायें छेद को दबाकर धीरे धीरे बाहर निकालना रेचक प्राणायाम है। ये तीनों क्रियायें एक बार करने से एक प्राणायाम हुआ। इसका ध्यान प्रत्येक प्राणायाम में रखना चाहिये कि दूसरे प्राणायाम में नाक के उसी छेद से वायु खींचना चाहिए जिससे पहिले छोड़ा गया है

फिर पूर्ववत् करना चाहिए । प्राणायाम से शारीरिक उन्नति किस प्रकार होती है इसका आभास "हमारा शरीर" प्रकरण पढने से पता चलता है क्योंकि श्वास प्रक्रिया से शरीर के भीतरी यन्त्रों और जीवन का कितना सम्बन्ध है यह भली भाँति जाना जाता है । प्राणायाम से छाती मे लचीलापन रहता है । बुढापे मे छाती कड़ी होने से सूखी खाँसी बहुत तग करती है, कफ बाहर नही निकल पाता । प्राणायाम करते रहने से यह कष्ट नही होता । फेफडो के सब जीर्ण रोगों मे प्राणायाम से लाभ होता है । फेफडे जितने मजबूत और शुद्ध होंगे, भीतों के लचीली होने से खाँसी क्षय रोग का भय उतना ही कम होगा । क्षयी और दमे के बीमार के तो प्राणायाम बहुत लाभकारी है । प्राणायाम से रक्त-प्रवाह को मदद मिलने से हृदय का परिश्रम बचता है जिससे वह अधिक समय तक काम कर सकता है । इसी से तो प्राणायाम करने वाले की जीवन शक्ति या प्राण शक्ति बढ़ जाती है और वह दीर्घायु होता है । प्रणायाम से हृदय और दिमाग के रोगों की शांति, बात विकारो का परिशोध और स्वास्थ्य रक्षा होती है । व्यायाम के साथ प्राणायाम का पूरा योग है । बिना प्राणायाम के व्यायाम अधूरा, रहता है इसीसे राममूर्त्ति ने अपने व्यायाम मे प्राणायाम पर जोर दिया है । हिचकी, हकलाने और नींद

आज कल अनेक दुर्व्यसनो से उत्पन्न हुई कमजोरियो के कारण भी प्राणायाम नही हो पाता। मादक द्रव्यों विशेपकर गॉजा, भाँग, अफीम, तथा तमाखू आदि का सेवन करनेवाले के लिये प्राणायाम अशक्य ही सा रहता है, इसलिये जीवन को नाश करने वाले इन दुर्व्यसनो से वचने मे ही भलाई है। इन व्यसनो से न केवल हृदय की कमजोरी वढती और रक्त दोप पैदा होता है वल्कि रक्त से वनने वाला वीर्य भी विगड़ जाता है जिसका बुरा परिणाम दुर्व्यसनी पर तो पडता ही है साथ मे उसकी सन्तानो पर भी पडता है। इसप्रकार के व्यसनियो को कुभक प्रणायाम में पूरी सावधानी रखनी चाहिये और दुर्व्यसनो को छोडकर ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। जो पुरुप दीर्घजीवी और स्वस्थ रहने की इच्छा करता है उसे नीचे की वातों का ध्यान रखते हुए प्राणायाम करना चाहिए।

माँस भोजन न करना चाहिये, तरह तरह के मसाले न खाना चाहिए। खाये भी जावे तो वहुत ही थोडा मात्रा में, खटाई मिर्च आदि तो छोड ही देना अच्छा है। सात्त्विक भोजन और फलो का सेवन करना चाहिए। वीर्य दोप से वचना चाहिए। आगे के प्रकरण में आसनो का वर्णन होगा यदि उनके साथ प्राणायाम भी किया जाय तो मनुष्य के समस्त रोग दूर होकर सभी वलो की प्राप्ति होती है।

१०—भोजन या आहार विहार

इस समय जहां अल्पायु में सब से अधिक मृत्यु संख्या होती है यदि ऐसा कोई देश है तो वह हिन्दुस्तान है। यही सब से अधिक स्त्री पुरुष बच्चे बाल्यावस्था में ही काल कवलित हो जाते हैं। बहुतेरों की तो जीवन कली खिलने भी नहीं पाती और वे कुम्हला कर नष्ट हो जाते हैं।

यही भारतवर्ष है जहां किसी समय प्रत्येक स्त्री पुरुष दिन में दो बार सायं प्रात ईश्वर-चिन्तन करते हुये—

· · पश्येम शरद शतं जीवेम शरद शतं शृणुयाम शरद. शत प्रब्रुवाम शरद शतमदीना स्याम शरद शतं भूयश्च शरद· शतात् ।

का उच्चारण किया करता था और सौ वर्ष तक शरीर के अङ्गों की अक्षुण्ण शक्ति और शरीर की अरोग्यता रहने की प्रार्थना करता हुआ सौ वर्ष से भी अधिक आयु की चाहना करता था।

उस समय सौ वर्ष की आयु साधारण मानी जाती थी और साधारण गृहस्थियों की आयु सौ वर्ष की होती थी योगी आदि तो सैकड़ों वर्ष जीते थे। प्रारम्भिक पच्चीस वर्ष तो केवल ब्रह्मचर्य के लिये निर्धारित किये गये थे।

इसके विपरीत अब इस देश की दशा पर ध्यान दीजिये तो

केवल शोक के, सन्तोष की तो कही परछाई भी नही दिखाई देती। अब तो पच्चीस वर्ष मे सैकड़ा पीछे पचहत्तर से अधिक स्त्री पुरुषों का ब्रह्मचर्याश्रम और गृहस्थाश्रम होना समाप्त हो कर बुढ़ापा आ जाता है। सन्तानें पूर्व से ही निस्तेज दुर्बल मरी हुई सी उत्पन्न होती हैं। दूसरे देशों को देखिये यहाँ से बिलकुल विपरीत दशा है वहाँ के स्त्री पुरुष यहाँ से कहीं अधिक दीर्घायु और स्वस्थ होते हैं।

इस लिखने का यह अर्थ नहीं कि यहां के स्त्री पुरुष स्वस्थ जीवन और दीर्घ जीवन नहीं चाहते। स्वस्थ जीवन और दीर्घ जीवन तो सभी चाहते हैं पर उनको आहार विहार का ज्ञान नही है जिनको इस विषय का ज्ञान भी है वे अपनी मानसिक दुर्बलता, स्वाद-लोलुपता और विषय लम्पटता के कारण उस ओर से उपेक्षा करते हैं और इच्छित वस्तु को खो बैठते हैं।

यह बात ठीक है कि यहा के कितने ही स्त्री पुरुषों को भर-पेट भोजन भी नसीब नही होता पर बहुत से आहार विहार मे आवश्यकता से अधिक व्यय करते हैं किन्तु उसका लाभ नही प्राप्त कर पाते उलटे हानि उठाते हैं। इसका यही कारण है कि वे आहार में अधिक व्यय करते हुए भी उसकी आवश्य-

कता और औचित्य पर ध्यान नही रखते। जो उस ओर ध्यान रखने पर भी स्वस्थ नही रहते वे विहार की अनियमितता के कारण।

इससे यह तो स्वयं सिद्ध है कि आहार विहार ही दीर्घ जीवन और स्वस्थ जीवन बनाने का एक मात्र साधन है। पर आहार विहार से तात्पर्य है कि उसकी उचित मात्रा द्वारा शरीर का पोषण और शरीर का रक्षण। निराहार अल्पाहार या अत्याहार तथा अति विहार अथवा दोनों में से एक के पालन से भी शरीर स्वस्थ और दीर्घायु नही हो सकता। उसके लिये आवश्यकता है नियमित और उचित रीति से दोनों की ओर साथ साथ ध्यान देने की।

कुछ समय काम देने वाली एक साधारण से साधारण मशीन भी बिना सफाई और तेल के पूरा काम नही दे सकती। फिर चौबसों घंटे कार्य करनेवाला शरीर बिना आहार के कैसे ठीक रह सकता है। निराहार तो उसके नाश का कारण होगा। विहार से अर्थ यही है कि मन सहित शरीर और शरीरेन्द्रियों से इस प्रकार कार्य लेना और उनको सञ्चालित करना कि उनकी स्वाभाविक शक्ति में कोई व्याघात न होने पावे न, शक्ति का ह्रास होने पावे बल्कि दोनो की ठीक रक्षा हो। इस लिये भ्रमण शयन आदि सभी कार्य ठीक होने चाहिये।

क्योंकि आहार द्वारा उचित पोषण होने पर भी विहार के व्यतिक्रम से उसका रक्षण नहीं हो पाता।

आहार के विषय मे चरक निर्माता सुश्रुत ने लिखा है—आहार प्राणिमात्र के लिये तत्काल बल बढ़ाने वाला, शरीर धारक और आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज तथा अग्नि वर्द्धक है।

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र (वीर्य) इन्हीं सात पदार्थों से शरीर बना है और स्थित है। अहर्निश के कार्य करने से शरीर के उक्त पदार्थों मे क्षीणता आती है। कोई पात्र पूर्ण तभी रह सकता है जब उसमें से निकलने के के साथ उसमें डालने का कार्य भी होता रहे। इसी प्रकार शरीर में उन क्षीण होते हुए पदार्थों की पूर्ति की भी आवश्यकता है। वह पूर्ति आहार के द्वारा ही होती है।

आहार ठीक न मिलने से रस रक्त आदि का बनना कम या बन्द हो जाता है इससे शरीर दुर्बल होने लगता है। इसलिये आहार मनुष्य मात्र क्या प्राणिमात्र के लिये आवश्यक है।

विहार के सम्बन्ध में "मनोयोग" "ब्रह्मचर्य" और "स्वास्थ सम्बन्धी जरूरी बातें" आदि प्रकरणों मे प्रकाश डाला गया हैं। इस भोजन (आहार) के प्रकरण में भी विहार

सतोगुण का विकास होता है। लेकिन इसके साथ बहुत खट्टा, मीठा, तीखा चरपरा न खाना चाहिये। उससे स्वास्थ्य को विशेषकर ब्रह्मचर्य को बहुत हानि पहुँचती है। रोटी के लिये आटा बहुत पतला पिसा हुआ न होना चाहिये, बल्कि चोकरदार मोटा होना चाहिये और रोटी बनाने से कुछ देर पहले उसे फुला देना चाहिये। चावल भी अच्छा भोजन है, पकाते हुए उसका माड़ न निकालना चाहिये। अनाजों में चना, विशेष पुष्टिकर अनाज है। दाल भूख को बढ़ाती और शाक खून को साफ करता है। बहुत अधिक पूड़ी पकवान आदि न खाना चाहिए उससे स्वास्थ्य नही सुधरता। तीसरा आहार माँसाहार है जो हर प्रकार वर्ज्य और तामसी प्रवृत्ति का बढाने वाला है। माँस आदमी का भोजन नही है। माँस खाने वाले के दाँत और ही प्रकार के होते हैं। माँसाहारियो के बच्चे जन्म के समय अन्धे होते हैं, उनकी आँखे देर में खुलती हैं। इसलिए माँसाहार तो कभी न करना चाहिये। माँस मनुष्य का भोजन नही।

हाँ, आहार के विषय मे यह ध्यान रखने की सदैव आवश्यकता है कि वह मात्रा से अधिक न होने पावे। पश्चिमीय विद्वानों ने तो मनुष्य के वजन पर साधारणतया आहार की तौल रखी है पर भारतवर्ष मे इसका कोई ठीक परिमाण नही

है। फिर भी उसकी साधारण मात्रा का विचार रखना हितकर ही है। क्योंकि जिस प्रकार बिना भोजन के शरीर नष्ट हो जाता है इसी प्रकार अति भोजन से भी नष्ट हो जाता है। भोजन सदैव सात्विक होना चाहिये। अधिक मात्रा में रजोगुणी और तमोगुणी पदार्थ खाना अच्छा नहीं होता उनमें मनुष्य स्वतः शान्ति सुख को दूर फेंक कर अशान्तियों को न्यौता देता है। साधारण रोटी, दाल, भात शाक घी दूध पदार्थ सतोगुणी हैं। तरह तरह के मसाले, तीखे कडवे चरपरे पदार्थ रजोगुणी तथा नशे, माँसादि तमोगुणी हैं।

सभी प्रकार के भोजनों में उनके रदो बदल का भी विचार रखना चाहिये अर्थात् हमेशा एक ही चीज या एक ही भोजन न करना चाहिये इससे रुचि बिगड़ जाती है और वह भोजन रोग पैदा कर देता है इसलिये चित्त को प्रसन्न रखने, रुचि को बदलने और ठीक रखने के लिये भोजन के पदार्थों में हेर फेर करते रहना चाहिये, उनके बनाने की भिन्न भिन्न विधियाँ जानना चाहिये।

बहुत से पदार्थ ऐसे हैं जो स्वतः हानिकर या लाभकर नहीं है पर दूसरे पदार्थों के संमिश्रण से वे हानिकर लाभकर हो जाते हैं। इन संमिश्रण विपरीत पदार्थों के सेवन से तरह २ के रोग पैदा हो जाते हैं इसलिये उनसे बचना चहिये। जैसे.—शहद

में गरम चीजे या घी तथा शहद समान भाग में या शहद मठा के साथ साथ या मूली के साथ खाना अत्यन्त हानिकर है, विष उत्पन्न करने वाला है। इसी तरह काँजी के साथ तेल की चीजे या दही के साथ गरम चीजे खाना अहितकर हैं। खिचडी भी शहद के साथ या खीर के साथ खाना अच्छा नही है। खरबूजे के साथ दूध अत्यन्त हानि कारक है। फलो के, नमकीन चीजों के, लहसन मूली के, या खट्टी चीजों के साथ दूध का सेवन न करना चाहिये। हाँ, आम या नीबू का सेवन हानिकर नही है। केला के साथ दही न खाना चाहिये। जल के साथ तेल या घी अथवा घी तेल मिला हुआ न खाना चाहिए। इसी प्रकार कुछ और भी पदार्थ हैं जो सयोग से विपरीत परिणामों को उत्पन्न करने वाले हैं इसलिये उनसे बचना चाहिये और यदि गलती से खाने मे आजायँ तो वमनादि के द्वारा निकाल देने चाहिए।

इसी प्रकार शराब गाँजा भाँग तमाखू सिगरेट आदि का सेवन भी स्वास्थ्य को बिगाडने और शरीर को बर्बाद कर देने वाला है। ऐसे हानिकर मादकों से हमेशा बचना चाहिए। इनके सेवन से शरीर का कण कण बिगड़ जाता है। अस्तु हमको फलाहार या अन्नाहार करना चाहिए वह भी सादा ही हो तो विशेष स्वास्थ्यकर होगा।

भोजन में मनुष्य की अपनी अपनी प्रकृति और शक्ति के अनुसार भी कुछ भेद होता है। कोई पदार्थ किसी मनुष्य को लाभ करता है वही दूसरे को हानि हहुँचाता है। प्रत्येक शरीर में वात पित्त कफ का संमिश्रण रहता है क्योंकि पृथ्वी जल तेज वायु और आकाश इन पाँच तत्त्वों से शरीर बना है। और ये पाँचों तत्त्व मिलकर वात पित्त कफ उत्पन्न करते हैं। पर किसी मे एक की अधिकता होती है किसी मे दूसरे की। उन्हीं वात पित्त कफ की न्यूनाधिकता से शरीर से रोग पैदा हो जाते हैं। खाये हुये पदार्थ वात पित्त कफ तीनों में से एक दो या तीनों को पैदा करने वाले हैं। जब कोई ऐसा पदार्थ खाने मे आ जाता है जो इन तीनो मे किसी को बढाकर हानि पहुँचावेगा तो रोग पैदा हो जाता है।

इसलिये भोजन मे अपनी प्रकृति के अनुसार त्रिदोषो की कमी वेशी का विचार कर भोजन करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य को अधिक सहायता मिलती है।

भोजन मे षड रस यानी छै रस होते हैं। खट्टा, मीठा, तीखा, खारी, कडुवा, और तुर्श। पृथ्वी और तेज (अग्नि) के गुण की अधिकता से खट्टा रस पैदा होता है। पृथ्वी और पानी से मीठा। पृथ्वी और आकाश से पानी और आग से खारी। वायु और आकाश से कडुवा। पृथ्वी और वायु से

स्वास्थ्य और योगासन]

तुर्श इन रसो का वात पित्त कफ के साथ गहरा सम्बन्ध है।

खट्टा—पाचक, बादी नाशक, मल मूत्र निस्सारक, वात दोष नाशक, आमाशय को शान्ति देनेवाला है।

मीठा—साधारण, दाह, तृषा नाशक। वर्ण निखारने वाला, नेत्र रोग नाशक तथा अस्थि, माँस वीर्य वर्द्धक है किन्तु अधिक सेवन से कफ वर्द्धक और कृमि उत्पादक तथा श्वास, आंव, खाँसी उत्पन्न करने वाला है।

तीखा—पाचक, कफ कृमि नाशक, रक्त शोधक किन्तु अधिक सेवन से शुष्कता लाता और बादी पैदा कर देता है जिससे पीड़ा होने लगती है।

खारी—पाचक, व्रणों को साफ करनेवाला। मल मूत्र शोधक है। अधिक सेवन से नेत्र को हानिकारक तथा रक्त को बिगाड़ने वाला है।

कड़ुवा—ज्वर, तृषा नाशक, कोढ़ खाज मे लाभकारी है। अधिक सेवन से कपकपी पैदा करने वाला और नसों को कड़ा करने वाला तथा क्षुधावरोधक है।

तुर्श—स्वेद नाशक, प्रमेहादि मे हितकारी है अधिक सेवन से उदर व्याधि कारक और हृदय मे पीड़ा उत्पन्न करने वाला है।

रसों के गुण उनके सेवन के हानि लाभ विचार कर प्रत्येक स्त्री, पुरुष को अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार पदार्थों का सेवन करना चाहिये। देखा देखी सेवन करने से हानि की सम्भावना रहती है।

हर समय भोजन न करने लगना चाहिये। उसके लिये समय नियत कर लेना चाहिये और नियत समय पर ही करना चाहिये। साधारण तया सुबह दश बजे तक और सायंकाल सात बजे तक भोजन कर लेना अच्छा है। बिना भूख के भी खाना हानिकर है। बहुत से लोग साधारण भोजन की अपेक्षा मीठा पक्वान्न आदि स्वादिष्ट चीजे ज्यादा खा जाते हैं, यह उचित नहीं। स्वाभाविक तरीके पर खाने पीने की पेट की थैली को आधा भोजन से चौथाई दूध पानी आदि से भरना चाहिये और चौथाई वायु के लिये खाली छोड़ देना चाहिए, इससे उदर व्याधि की शिकायत बहुत कम होगी। इसीसे कहा गया है कि "कम खाना गम खाना" में बड़ा आनन्द है। भोजन का स्थान एकान्त, शुद्ध पवित्र लिपा-पुता होना चाहिये।

साधारणतया दिन रात में दो बार भोजन और एक दो बार हलका जलपान (नाश्ता) किया जाय तो अच्छा है। भोजन खूब अच्छी तरह चबाकर तब निगलना चाहिये। एक कौर ३२ बार कुचलना चाहिये। नहीं तो कम से कम २०-२२ बार तो

कुचला ही जावे। भोजन के समय जितना कम पानी पिया जाय, अच्छा है। न पिया जाय तो सबसे अच्छा। भोजन बहुत प्रसन्न चित्त होकर करना चाहिये। उस समय मन में क्रोध या बुरे विचार न लाने चाहिये। यह सदैव ध्यान मे रखना चाहिये कि जैसे भोजन और विचार होंगे उसी के अनुसार रस, रक्त, माँस, बुद्धि और कार्य होंगे। आत्मा को पवित्र रखना मन के विचारों और सात्विक भोजन पर निर्भर है। भोजन के बाद थोड़ा टहलना उत्तम है। तुरन्त सो जाने या परिश्रम के कार्य में लग जाने से हानि होती है।
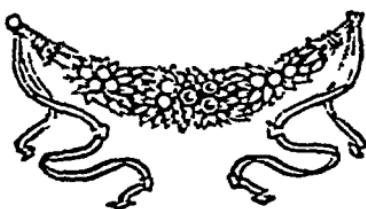
११—दूध और फल

यह बतलाया जा चुका है कि शरीर के लिये सर्वोत्तम भोजन दूध और फल हैं। दूध और फल मनुष्य को आरोग्य स्वस्थ और कान्तिवान बनाते हैं मनुष्य में सतोगुण का विकास करते हैं, चित्त में शान्ति उत्पन्न करते हैं।

हमारे पूर्वज अधिकतर इन्हीं पर निर्भर रहते थे। ऋषि मुनियों का तो यही आहार था। आजकल भी बहुतेरे स्वास्थ्य रक्षा के लिये डाक्टरों और वैद्यों के कथनानुसार दूध और फलों का सेवन करते हैं।

हाँ, उक्त दोनो पदार्थ जिस प्रकार पहले सुलभ थे उस प्रकार अब नहीं है। धनवान व्यक्ति तो अब भी उनका सेवन कर सकते हैं पर निर्धन नहीं कर सकता।

इस समय हम में अधिकांश दूध और फलों के गुणों को भी भूल गये हैं। अक्सर देखने में आता है कि साधन होते हुये, खर्च करते हुये भी लोग फलों की ओर कम ध्यान देते हैं। मिठाई नमकीन वगैरह अधिक खरीदते हैं। इसीप्रकार दूध सेवन की सामर्थ्य रखते हुए भी दूध न लेकर लोग दूसरे पदार्थों का सेवन करते हैं।

अँगरेजों को देखिये उनमें अधिकांश का स्वास्थ्य कितना

अच्छा रहता है इसका प्रधान कारण क्या है ? अन्य कारणो के साथ इसका प्रधान कारण यही है कि वे भोजन में फल अधिक लेते हैं मीठा आदि कम पसन्द करते हैं। दूध और फलो के हमारे शास्त्र कारों ने बहुत गुण बतलाए हैं। दूध को ससार मे सब पदार्थों से अधिक पौष्टिक और गुणकारी बतलाया है। दूध को अमृत बतलाया गया हैं। दूध मनुष्य की शारीरिक शक्ति के साथ २ आध्यात्मिक शक्ति का बढ़ाने वाला है। लिखा है.—

दुग्ध सुमधुर स्निग्ध वातपित्त हरं सरम्।
सद्यः शुक्रकरं शीतं सात्म्य सर्वं शरीरिणाम्॥
जीवन बृंहणं बल्यं मेध्य वाजीकर परम्।
वयः स्थापनमायुष्य सन्धिकारि रसायनम्॥

अर्थात् दूध सब के लिये मधुर, चिक्कण, वात पित्त नाशक सारक, तत्काल वीर्य उत्पादक, शीतल, सात्म्य करने वाला, जीवन, बृंहण, बलकर, बुद्धिवर्धक, वाजीकर, वयः स्थापक, आयुवर्धक, सन्धिकारक और रसायन है।

सब से उत्तम दूध माता का होता है। वैसे हमारे देश में अनेक जानवर हैं जिनका दूध सेवन किया जाता है पर विशेष कर गाय, भैंस, बकरी के दूध का उपयोग होता है। इनमें भी गाय का दूध सब से अच्छा होता है। यदि गाय काली हो तो कहना ही क्या है।

जो गायें थोड़ा खाने वाली होती हैं उनका दूध भारी, वर्ण को उज्वल करने वाला, कफ वर्धक, और स्वास्थ के लिये गुण-कारी होता है।

जो गायें पयाल, घास, बिनौले आदि खाती हैं उनका दूध अत्यन्त हितकर होता है। जो गाये वनों या पर्वतों पर चरती हैं उनका दूध वैसा ही होता है जैसा वे आहार करती हैं।

जवान, दो तीन बार की बियाई हुई गौ का दूध मधुर, रसायन, वात पित्त कफ के दोषों का हरनेवाला होता है। बूढ़ी गौ का दूध उससे कमजोर होता है।

जो गौ पहली बार बियाई है उसका दूध गुणकारी नही होता। तत्काल बियाई गौ का दूध भी हितकर नहीं होता।

समान वर्ण बछड़े वाली तथा सफेद और काली गौ का दूध श्रेष्ठ माना गया है। ऊँचे उठे हुए सीधे सींगों वाली गौ का दूध कच्चा हो या पक्का दोनों दशाओं मे पीने में हितकारी होता है।

धरोष्ण दूध (दुहकर तत्काल जमीन पर बिना रखे पिया जाने वाला) बलकर, हलका, शीतल अमृत तुल्य, जठराग्नि को बढ़ाने वाला, वात पित्त कफ के दोषों का हरने वाला होता है। दुहने के बाद थोड़ी देर में जब दूध की गर्मी शान्त हो जाती है तो वह कच्चा दूध पीने लायक नहीं रहता तब उसे पका कर

पीना चाहिये।

केवल दूध के बने हुये पदार्थ भी अधिक अंशों में दूध के समान गुणकारी होते हैं। दूध खालिस तथा अनुपान के साथ अनेक रोगों का नाश करने वाला है।

औटाया हुआ दूध गौ का दही घी और मिसरी मिलाकर पीने से अत्यन्त पौष्टिक होता है। घी और शहद विषम मात्रा में मिला कर पीने से शक्ति-वर्द्धक होता है। अनुपान के साथ गाय का दूध शारीरिक दर्दों को दूर करने वाला बल्कि टूटी हड्डी तक को जोडने वाला है। गाय के दूध मे अनेक गुण हैं जिनको लिखने से अलग ही पुस्तक बन सकती है।

भैंस का दूध गाय के दूध से भारी मधुर, अधिक चिक्कण, वीर्यजनक और आलसकर है। निर्बल, बीमार या साधारण आदमी भैंस के दूध को पचा नही सकता। बीमार को तो भैंस का दूध दिया ही नही जाता। बलवान के लिये भैंस का दूध अत्यन्त हितकर है।

बकरी का दूध—गाय, भैंस से हलका होता है और शीघ्र पाचक होता है। बीमार को वैद्य लोग अधिकतर बकरी का ही दूध पीने के लिये बतलाते हैं।

जो लाभ दूध से होता है वही लाभ उसके दही, मठा, घी आदि मे होगा ऐसा न समझना चाहिये उनके गुण और

प्रभाव पृथक पृथक हो जाते हैं। और अपने अपने गुणों के अनुसार विशेष विशेष स्थलों पर उपयोगी होते हैं। साधारण तया दही, मठा, घी तीनों ही रुचिकर और वलवर्धक हैं।

जिस प्रकार दूध मनुष्य के लिये अत्यन्त हितकारी है उसी प्रकार फल भी हैं। शरीर-विज्ञान के वेत्ताओं ने भलीभाँति यह सिद्ध कर दिया है कि शरीर में सब से अधिक अंश पानी का है। करीब तीन चौथाई में पानी है बाकी एक चौथाई या उसके कुछ अधिक में बाकी पदार्थ हैं। जब पानी का अंश शरीर में अधिक है तो इससे यह स्पष्ट है कि शरीर रक्षा के लिये हमको वही अंश अधिक मात्रा में पहुँचाने की आवश्यकता है।

तब मोटी तौर से यह समझ में आ जाता है कि सूखे पदार्थों से सरस पदार्थ अधिक लाभकारी हैं यानी सूखे अनाज से सरस फल अधिक हितकारी हैं। फल भी बहुत से सूखे होते हैं पर अनाज से वे प्रभाव अधिक रखते हैं।

आलू, ककड़ी, खरबूजा, इत्यादि की गिनती यद्यपि शाक वर्ग मे हैं फिर भी फलाहार में गिने जाते हैं विशेष कर वर्त्तमान परिस्थिति में जब अन्य फलो की अपेक्षा ये ही सुलभ हो सकते हैं। शाक वर्ग और फल वर्ग दोनों ही में कितने ही ऐसे हैं जिन सब का विवेचन यहाँ नही किया जा सकता।

अस्तु फलों और शाकों में से कुछ मुख्य मुख्य के संबंध में जो अपने देश में अधिक प्रचलित हैं, संक्षिप्त रूप से कुछ लिखा जाता है। कच्चे फलों के गुण पकने पर बदल जाते हैं यहाँ पक्के फलों का ही वर्णन किया जाता है।

आलू—सब जगह पैदा होता है। इसका स्वाद फीका होता है। खाने में पाचक भारी और गरम होता है। बादी और कफ को बढ़ाता है। बल लाता है, क्षुधावर्द्धक होता है। कच्चा आलू ठंढा होता है।

खरबूजा—जल के किनारे होता है। स्वाद में मीठा होता है। पका वैसे ही या शक्कर के साथ, कच्चा शाक बनाकर खाया जाता है। यह पेट साफ करने वाला, शीतल पौष्टिक, वात्त, पित्त रोग नाशक, सुस्वादु, बलवर्धक, मूत्र-कारी होता है।

तरबूज—जल के किनारे होता है। राजपूताने के रेगिस्तानों में भी बहुत होता है। स्वाद में मीठा पका तरबूज गरम, मलावरोधक, भारी और शुक्रनाशक होता है। मिश्री के साथ चूर्ण बनाकर खाने से बल बढ़ाता है।

ककड़ी—रूखी, शीतल, भारी, रुचिकर पित्तनाशक और मलावरोधक होती है। ककडी खाने से शराब का नशा

उतर जाता है। ककड़ी के बीज वीर्य को पुष्ट करने वाले होते हैं और ठढक पहुँचाते हैं।

सिंघाड़ा—तालावों में होता है। शीतल, सुस्वादु, भारी, मलावरोधक, वीर्यवर्धक, वातकारक तथा, कफ, रक्त, पित्त और दाह नाशक है तथा रक्त-विकारों को दूर करता है।

शकरकन्द—सब जगह होती है। यह खाने में मीठी शीतल, भारी, वलवर्धक, पित्तनाशक और श्रमहर होती है। शरीर को पुष्ट करती है। प्रमेह रोग में फायदा करके वीर्य को बढ़ाती है।

गाजर—मधुर, रुचिकर, वल वीर्य वर्द्धक, कफ नाशक शूल दाह तथा पित्त को शान्त करने वाली होती है।

मूली—तीक्ष्ण, कटु, गरम, दीपन, रुचिकर वात नाशक और भारी होती है।

गन्ना या ईख—रक्त पित्त नाशक, पाचक, मधुर, शीतल और वल कारक होती है।

आम—कच्चा आम खट्टा, गरम, मलावरोधक कान्ति वर्धक किन्तु रूखा होता है। कण्ठ रोग प्रमेह अतिसार में

लाभकारी होता है। पका आम मधुर, वातनाशक, और पित्त को कुपित करने वाला होता है। यदि आम का रस निचोड़ कर पिया जावे तो बल कारक होता है।

आम चूसने या आम का रस पीने के बाद दूध पिया जावे तो वह स्वादिष्ट, स्थूलतावर्धक, कान्ति कारक और वीर्य वर्धक होता है किन्तु सुस्ती लाता है। फलों में आम सब से बढ़कर माना गया है। इसे सब फलों का सरताज कहा है। गर्मी में लू लगजाने पर कच्चे आम का पना नमक और जीरा डाल कर पीने से पूरा लाभ करता है। आम अनुपान के साथ अनेक रोगों में हितकारी है।

अमरूद—अत्यन्त शीतल, कफकारक, पाचक, स्वादिष्ट रुचिकारक और वीर्योत्पादक है। अमरूद के बीज हानिकर होते हैं।

अनार—मधुर, खट्टा, स्निग्ध, रुचिकारक, अग्निदीपक, रक्तवर्धक, पित्तनाशक होता है। मीठा अनार वीर्यवर्धक, बल-वर्धक, तृषादाह को शान्त करने वाला और बुद्धिवर्धक होता है, खाँसी में विशेष लाभकारी होता है। खट्टा अनार कफ वातनाशक है।

जामुन—स्वादिष्ट, भारी, रूक्षकर, कफ पित्त का नाश

करनेवाली है। जामुन का सिरका उदर शूल को तत्काल दूर करता है। यह अनुपान के साथ और भी अनेक रोगों की नाशक होती है।

बेल—गरम, रुचिकर, मधुर, कसैला, पाचक, पित्तकारक होता है ज्वर का नाश करता है। बेल के गूदे का शरबत शीतलता लाता है। बेल की जड़ दूध में उबाल कर पीने से जीर्ण ज्वर दूर होता है।

बेर—शीतल, मधुर, पुष्टिकर, तृषा नाशक, भेदक, वीर्य-वर्धक, और पित्त नाशक होता है। सूखे बेर का आटा बना कर कोई कोई उसकी रोटी बनाकर खाते हैं।

शरीफा—शीतल, मधुर, बलकारी, कफकारक और पित्त नाशक होता है। हृदय को हितकारी होता है किन्तु वात उत्पन्न करता है।

नारियल—दाह कारक, पित्त कारक, भारी, मलाव-रोधक रुचिकारक, मधुर और वीर्य वर्द्धक होता है। गरी खा कर पानी पी लेने खाँसी हो जाती है। कच्चे नारियल का पानी स्वादिष्ट शीतल और तृषानाशक होता है।

केला—बलकर, मधुर, शीतल, वीर्यवर्द्धक, पित्त, प्रमेह

क्षुधा नाशक होता है। नेत्र रोग में हितकारी होता है। केला कब्ज करने वाला होता है। इससे मन्दाग्नि वाले को हानिकारक होता है।

खजूर—शीतल, मधुर, रुचिकर, भारी, तृप्ति कारक रक्त पित्त नाशक, पुष्टिकर, वीर्यबर्द्धक, ज्वर, क्षुधा, तृषा श्वास आदि में हितकारी होता है।

इमली—मधुर, खट्टी, हृदय को हितकर, रुचिकर, दीपन, कफ वात नाशक, होती है। कच्ची इमली कफ और रक्त को कुपित करती है। पक्की इमली कृमि और व्रण दोषनाशक, होती है।

मूंगफली—मधुर, स्निग्ध, कफकर, मलावरोधक, होती है खाने से गरमी करती और रूक्षता लाती है।

नीबू—खट्टा, गरम, शीतल. कंठशोधक, पाचक, अग्नि दीपक, हृदय को हितकर, कान्ति वर्द्धक, वात पित्त कफ अजीर्ण, श्वास, तृषा, अरुचि नाशक होता है, खाने में स्वादिष्ट होता है।

अंगूर—मधुर, शीतल, रक्त, बल, वीर्य वर्द्धक, नेत्र को हितकर, स्वर शोधक, तृषा, ज्वर, श्वास रोग में लाभकारी

होता है। यह पका हुआ मुनक्का हो कर रुचिकर, पाचक क्षुधा वर्द्धक और पुष्टिकारक होता है। इसी का छोटा दाना किशमिश होता है इसमें इससे कम गुण होते हैं।

फालसा—मधुर, शीतल, हृदय को हितकर, पुष्टिकर, तृषा, दाह, पित्त और रक्तविकार को नाश करनेवाला होता है।

अंड खरबूजा या पपीता—मधुर, पाचक, रुचिकर और पित्तनाशक होता है। कब्ज में पपीता बड़ा लाभ करता है। कच्चे पपीता का शाक अच्छा होता है।

संतरा या नारंगी—शीतल, तृषा नाशक, पाचक, रुचिकर, कफ कारक, रक्त वर्द्धक और दस्तावर होती है। खाने में मधुर होती है। कोई कोई खट्टी भी होती है।

बादाम—सारक, गरम, भारी, देर में हजम होने वाला, बल वीर्य वर्द्धक, स्निग्ध, स्वादिष्ट, और वात पित्त नाशक होता है। बादाम का हलुआ पुष्टिकर और वीर्य वर्धक होता है पर बादाम खाने में उसे पचाने की ताकत होनी चाहिये।

नाशपाती—मधुर भारी वीर्यवर्द्धक रुचिकर, और वात पित्त कफ को शान्त करने वाली होती है।

सेब—वात पित्त नाशक, कफ कारक, मधुर, रक्त वर्द्धक रुचिकर और वीर्योत्पादक होता है।

१२—स्वास्थ्य के लिये कुछ और ज़रूरी बातें

मनुष्य को पवित्र, सदाचारी, स्वस्थ और नीरोग रहने के लिये नीचे लिखी बातों की तरफ भी ध्यान रखना आवश्यक है।

विचार हमेशा पवित्र रखना चाहिये। गन्दे विचार भी मनुष्य को शक्ति-हीन बना देते हैं। बहुत से मनुष्य चाहे क्रिया द्वारा कुछ न कर सके किन्तु गन्दे विषय-विचारों से ही अपने को बरबाद कर बैठते हैं। प्राय. धातु-दौर्बल्य और प्रमेहादि रोग विषयी बातों के चिन्तन से ही पैदा हो जाते हैं। हमेशा सब स्त्रियों मे (अपनी स्त्री के अतिरिक्त) मातृवत और बहन-वत दृष्टि रख कर उनसे यथोचित व्यवहार करना चाहिए। आज कल अक्सर भाभी, माई, साली वगैरह से लोग हँसी मज़ाक़ करने लगते हैं, यह सर्वदा अनुचित है। बहुत फैशन ऐश आराम का चसका मनुष्य को नाश कर देता है। इससे अपनी रहन सहन बहुत सादी और नम्र रखनी चाहिये।

सादा किन्तु स्वच्छ वस्त्र पहरना चाहिये। अभिमान को छोड़ कर सब से विनय भाव पूर्वक व्यवहार करना चाहिये। साथ हमेशा अच्छे आदमियो का ही करना चाहिये। बुरी संगति मनुष्य को बुरा और अपवाद का रूप बना देती है। सत्संगति से विचार पवित्र, ज्ञान-वृद्धि और आत्मा का कल्याण

होता है । कहा है—"सत्संगतिः कथय किन्न करोति पुंसाम्" अर्थात् सत्संगति मनुष्य को क्या नहीं बना देती यानी सत्संगति से मनुष्य ऊँचा से ऊँचा हो सकता है। हमेशा अच्छी. ज्ञानवर्धक पुस्तकें ही पढ़नी चाहिए। गन्दी अश्लील पुस्तकें, व्यर्थ के नाटक उपन्यास. खराब किस्से कहानी आदि कुसंगति से भी अधिक बुरा परिणाम पैदा कर देते हैं।

मनुष्य को सब से अधिक महापुरुषों के जीवन चरित्रों को पढ़ना चाहिए। शरीर को स्वच्छ रखना चाहिए। बिना किसी विशेष कारण के स्नान नित्य करना चाहिए और शरीर को खूब रगड़ कर नहाना चाहिये। जहाँ तक हो. ताजे शीतल जल से नहाना लाभकारी है। स्नान के बाद शरीर को अच्छी तरह पोंछ देना चाहिये तब कपड़े पहरने चाहिये। बताया जा चुका है कि मादक द्रव्य मनुष्य को बिगाड़ देते हैं इनसे पुरुषत्व का नाश नेत्र-ज्योति मन्द. फेफड़ों की खराबी, सुस्ती, तामस, दिमाग की कमजोरी. खाँसी आदि बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं। इनके सेवन करने वाले कोई ही स्वस्थ सदाचारी और निरोग देखे गये हैं। इसलिये इनका त्याग ही कर देना चाहिये। शौच (टट्टी) दो बार जाने की आदत डालनी चाहिये इससे पेट साफ़ और शरीर हलका रहता है। अपान वायु कभी न रोकना चाहिये। टट्टी जाने से मल मूत्र की इन्द्रियाँ नित्य धो कर

साफ कर देनी चाहिये। रात को न बहुत समय तक जागना चाहिये, और न सूरज निकले तक सोते रहना चाहिये इससे शरीर में आलस्य भरा रहता है। सदैव रात के १० बजे तक सो जाना और प्रातः ४ बजे उठना अच्छा है।

प्रात. काल का उठना मनुष्य की स्वास्थ्यवृद्धि में औषधि का काम करता है। कभी कभी व्रत (उपवास) कर लेना भी अच्छा होता है। हमारे प्राचीन पुरुषों ने इसीसे व्रत नियत कर दिये हैं, इससे मलविकार नष्ट हो जाते हैं। आज कल लोग व्रतों में अन्नाहार से अधिक फलाहार कर लेते हैं, व्रत का यह विधान नही है, न उस व्रत से कोई लाभ है। व्रत ता शरीर और मानसिक शुद्धि के लिए किये जाते हैं। इसलिये व्रत में सर्वोत्तम तो न खाना अच्छा। खाया भी जाय तो बहुत थोडा और हलका भोजन।

मनुष्य को अपने वचनों के पालन, समय के सदुपयोग, धर्मानुकूल आचरण, और सतत उद्योग की ओर हमेशा ध्यान रखना चाहिए। एक सब से मुख्य बात यह है कि इन सब कार्यों को करते हुए ईश्वर भजन न भूल जाना चाहिए जो मनुष्य का प्रधान कर्म और तमाम श्रेष्ठ कार्यों में शक्ति प्रदान करने वाला है। अपने यहाँ इतिहासों के पढ़ने से मालूम होता है कि बड़े बड़े पापी, दुराचारी, अधर्मात्मा ईश्वर के भजन से

पाप मुक्त हो मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। इसलिये सब कार्यों को छोड़ कर नित्य थोड़ा समय ईश्वर भजन में देना चाहिए। ईश्वर-भजन के ही प्रताप से महात्मा गांधी आज संसार के सर्व श्रेष्ठ व्यक्ति बने हुए हैं।

प्रारम्भ के निवेदन में मैंने लिखा है कि तेल की मालिश भी स्वास्थ्य के लिये विशेष लाभकारी है। अस्तु उसके सम्बन्ध में कुछ लाइने यहाँ लिखदेना अनुचित न होगा। मालिश के सम्बन्ध में सुश्रुत ने चरक में बतलाया है:—

जलसिक्तस्य वर्द्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरास्तरोः
तथा धातु विवृद्धिर्हि स्नेह सिक्तस्य जायते।

अर्थात् पेड़ की जड़ में जल देने से जिस प्रकार उसमें अधिकाधिक अकुर बढते हैं उसी प्रकार तैल की मालिश करने से शरीर की धातुयें बढ़ा करती हैं।

इससे आप अनुमान कर सकते हैं कि शरीर के लिये आवश्यकतानुसार मालिश करना भी कितना लाभकारी है। मालिश से अंगों के दर्द या मोच वगैरह दूर होते हैं। आरोग्यता में मालिश करने से शरीर में गठन आती है, शरीर का रूखापन दूर होता है। शरीर की थकावट दूर होती है। खून में गर्मी आ जाती है और शरीर में उसका वेग अच्छा होने लगता है। कानों और मस्तक में तेल डालने से शिर-पीड़ा में लाभ होता

है, नेत्रो की ज्योति बढ़ती है। हॉ ज्वर आदि में या फोडा घाव आदि होने मे अथवा बीमारी की हालत मे मालिश न करनी चाहिये। यदि उससमय मालिश की आवश्यकता प्रतीत हो तो वैद्य डाक्टर की सम्मति के अनुसार करना चाहिये।

मालिश करने मे इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि वह रक्त-प्रवाह की उल्टी गति से न की जाय। अर्थात् छाती पेट आदि की दिल की ओर का करनी चाहिये। हाथो की कधों की ओर करनी चाहिये। पैरो को जघों की ओर करनी चाहिये।

चार तरह से मालिश की जाती है। एक—खाल को दवाना और लपेटना किन्तु इसप्रकार की मालिश मे इतनी तेजी न करनी चाहिए कि जलन पैदा होने लगे। जिस प्रकार प्रायः पहलवान लोग हाथ पैरो की करते हैं। दूसरी—हथेली और अँगुलियों से दबाना जिस प्रकार साधारणतया पैर दवाए जाते हैं। तीसरी—थपकी देना यानी हथेली से अग को थपथपाना जिस प्रकार सिर मे तेल डालकर थपथपाया जाता है। चौथी—टंकोर यानी हाथ की दो उँगलियो से किसी अग को धीरे धीरे दबाव देना और उसे यहाँ तक बढ़ाना कि उसका असर अङ्ग के भीतरी हिस्से तक पहुँच जाय।

ऊपर वतलाया जा चुका है कि मालिश करने से शरीर को

क्या लाभ है। आपने प्राय देखा होगा कि कसरत करने वाले सभी पहलवान प्राय नियम में तेल की मालिश करते हैं। मालिश से शारीरिक शक्ति बढ़ती है और शारीरिक शक्ति बढ़ने से कार्य अधिक होता है, थकान कम आती है। मालिश से मुख और शरीर की कान्ति भी बढ़ती है।

मालिश के लिये सब से अच्छा शुद्ध सरसों का तेल होता है। वैसे बीमारी में वैद्य जो तेल बतलावे उसकी मालिश करनी चाहिये।

१३—दिनचर्य्या

स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे जितनी बाते लिखी गई हैं या आगे लिखी जायँगी वे सर्व साधारण के लिये हैं। जिनके अनुसार चलने से प्रत्येक स्त्री पुरुष स्वस्थ और आरोग्य रह सकता है।

इन दो चार लाइनों में दिनचर्या के विषय मे लिखा जाता है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य का दिनचर्या से गहरा सम्बन्ध है। जो स्त्री या पुरुष अपनी दिनचर्या ठीक रखता है उसके भी अस्वस्थ होने की सभावना बहुत कम रहती है या यों कहना चाहिये कि रहती ही नही। अस्वस्थता तभी आती है जब दिनचर्या में कुछ परिवर्त्तन हो जाता है। इस लिये प्रत्येक को अपनी नियमित दिनचर्या बना लेना चाहिये। दिनचर्या स्वास्थ्य को तो लाभ पहुँचाती ही है दूसरे मनुष्य मे आलस्य या निष्क्रयता नही पैदा होने देती और मनुष्य को उसके कर्त्तव्य कार्यों मे सफल बनाती है।

बहुतेरे यह कहते हुए सुनाई देते है कि "हमारा समय काटे नही कटता। इसके विपरीत बहुतेरे यह कहते हैं कि "काम के मारे दम मारने तक की फुर्सत नही मिलती"। मै समझता हूँ इन दोनो प्रकार की उक्तियो का मुख्य कारण है कि नियमित दिनचर्य्या न रखना। फिर पहली उक्ति वाले का तो

एक मात्र यही प्रधान कारण है। यदि नियमित दिनचर्या बना ली जाय तो दोनों तरह की व्यक्तियों की शिकायत जाती रहे।

सर्व-प्रथम प्रात: काल उठना चाहिये। उठने का समय ब्राह्ममुहूर्त्त का ४ बजे का होना चाहिये कुछ देर हो तो ५ बजे तक जरूर उठ जाना चाहिये। उठ कर पहले ईश्वर का चिन्तन करना चाहिये और उसमें श्रेष्ठ कार्यों में दिन बीतने की प्रार्थना करनी चाहिये। फिर बड़ी शान्ति और सरलता पूर्वक बिस्तर छोड़ना चाहिये।

बिस्तर से उठकर शौच जाना चाहिये। यदि शौच जाने से पूर्व जल पीने की आदत हो तो दो एक कुल्ले से मुख साफ करके तब जल पीना चाहिये।

शौच से निपट कर मिट्टी से अच्छी तरह हाथ और लोटा मलकर धोना चाहिये। इसके बाद अच्छी तरह कुल्ला दातून करके मुख धोना चाहिये। दातून अवश्य करना चाहिये दाँत साफ न करने से उनमें मैल जम जाता है और बदबू तो आने ही लगती है साथ ही अजीर्ण आदि अनेक तरह के रोग पैदा हो जाते हैं। दाँतों में कीड़े लग जाते हैं, उनमें पीप वगैरह पड़ जाती है इस लिये दाँत रोज अच्छी तरह साफ करना चाहिये। दातून सिहोरा, बबूल, नीम, मौलश्री की बहुत फायदे मन्द होती है। यदि दातून न मिले तो मंजन या कोयले आदि से

हो मल डालना चाहिये। मुख साफ करने मे यह ध्यान रखना चाहिये कि आँख, कान, नाक, वगैरह सब अच्छी तरह साफ किये जायँ।

इसके बाद आसन और व्यायाम करना चाहिए। जिन लोगों के कार्य ही व्यायाम के हैं उनको व्यायाम करने की कोई खास जरूरत नही है।

व्यायाम के कुछ देर वाद अच्छी तरह स्नान करना चाहिये। स्नान करने में शरीर को ख़ूब रगडना चाहिये और अच्छी तरह अँगौछे से पोंछना चाहिये।

स्नान करने के पश्चात अपने धर्मानुकूल कुछ समय ईश्वर का भजन अवश्य करना चाहिये। इससे मन की एकाग्रता होती है और चित्त को शान्ति मिलती है। उसी समय यदि अपनी निर्वलताओं और अपने कर्त्तव्यो पर भी विचार किया जाय तो वहुत अच्छा है। उस विचार मे अपनी वुराइयो पर ग्लानि और पश्चात्ताप करना चाहिये।

भजन के वाद कुछ कलेवा (जल-पान) करना चाहिये।

इसके वाद स्वाध्याय करना चाहिये। स्वाध्याय में अच्छी अच्छी आध्यात्मिक मानसिक, और शारीरिक उन्नति करने वाली पुस्तकें पढ़नी चाहिए। जो विद्यार्थी हो वे अपना पाठ याद करे। कवि, लेखक, सम्पादक आदि अपना २ कार्य करे।

स्वाध्याय के बाद दुपहर का भोजन करना चाहिये। भोजन के बाद कुछ आराम करना आवश्यक है। इसके पश्चात् अपना धंधे का कार्य करना चाहिये। सायं काल के समय शौचादि से निवृत्त होकर जलपान कर के टहलना, खेलना, वार्त्तालाप करना, समाचार पत्रादि पढना, पत्रादि लिखना रुचि अनुसार करना चाहिये।

इनके पश्चात् सायंकाल को भी कुछ देर ईश्वर का चिन्तावन करना चाहिये।

ईश्वर चिन्तन के बाद रात्रि का भोजन करना चाहिये।

भोजन के बाद विद्यार्थियों को अपना अध्ययन कार्य अन्यों को अच्छी पुस्तकें आदि पढ़ना चाहिये ताकि मन में कोई विकार उत्पन्न न हो।

रात को ९ या १० बजे सो जाना चाहिये। सोने से पहले ईश्वर स्मरण करना चाहिये।

इस प्रकार अपनी दिनचर्या बिताना चाहिये इसमें भी प्रत्येक कार्य के लिये समय निश्चित करलेना चाहिये उसी समय के अनुसार कार्य करना चाहिए बहुतेरे अपनी नित्य की दिनचर्या लिखते जाते हैं वह भी बहुत अच्छा होता है।
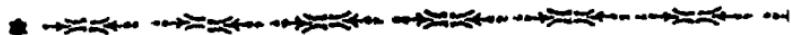
१४—आसनों का तत्त्व

प्राणीमात्र सुख चाहता है और सुख-प्राप्ति के साधनों में प्रवृत्त होता है। मनुष्येतर प्राणी ज्ञान-शून्य होने से विचार पूर्वक साधनों में प्रवृत्त नहीं होते, अपितु प्रेरणा से ही वे स्वभावतः साधनानुकूल हो जाते हैं। उन्हें आध्यात्मिक जीवन से तो कोई सम्बन्ध रहता नहीं, शारीरिक जीवन में भी उन्हें वे प्रपञ्च नहीं करने पड़ते जो मनुष्य को करने पड़ते हैं। चूँकि परमात्मा ने मनुष्य को ज्ञान और विचार शक्ति दी है इससे यह अपने सभी कार्य्यों में उनका उचित या अनुचित प्रयोग करता है। अन्य जीव जातियों का तो केवल शरीरिक उन्नति या सुख से सम्बन्ध रहता है। जिसमें उनके विचार नही किन्तु प्रकृति और ईश्वरीय प्रेरणा सहायता देती है। उन्हें खाने पीने के लिये चूल्हा या चक्की खेती बारी की आवश्यकता। नहीं होती। किन्तु प्रकृति ही उनके खाने पीने पहनने के साधन जुटा देती है। शरीर-सुधार के लिये वे स्वभावतः जन्म से ही अङ्ग-चालन आदि की ऐसी क्रियायें करते हैं जिनसे उनका व्यायाम हो जाता है। प्रायः उनके मैथुन, शयन और आहारादि भी समय से और नियमित हुआ करते हैं।

इसके विपरीत मनुष्य को सब साधन जुटाने पड़ते हैं।

और विचार-शक्ति के कारण शरीर-सुधार आहार विहार (मैथुन शयनादि) में वह मनमाने विपरीत आचरण करता रहता है और इनमें भी भाँति भाँति के साधन खोजता है। बहुत अंशों में तो इन बातों में मनुष्यों से पशु पक्षी कहीं अधिक अच्छे साबित होते हैं। यदि मनुष्य अपनी टाँग न अड़ा कर पशु पक्षियों के आहार विहार और उनके परिणाम को देखकर चले तो उसका निज का सुधार हो सकता है। आदर्श जीवन बनाने के लिये मनुष्य को आदर्श बातों की आवश्यकता होती है। उसे शारीरिक और आध्यात्मिक दो उन्नतियों की ओर देखना पड़ता है तभी मनुष्य जीवन सार्थक होता है। आध्यात्मिक जीवन का सम्बन्ध केवल मनुष्य से होता है, सांसारिक इतर जीव से नहीं। शारीरिक जीवन में बहुत से ऐसे साधन हैं जिनका सम्बन्ध पशु पक्षियों में तो केवल शरीर से है किन्तु मनुष्य जीवन में वे कुछ प्रकारों के साथ शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों में जुड़े हैं। इसी प्रकरण में आगे इनका स्पष्टीकरण होगा।

प्राचीन ऋषियों ने आसनों का क्रम आध्यात्मिक उन्नति को सम्मुख रखते हुए स्वस्थ शरीर को उस मार्ग के योग्य बनाने के लिये रखा गया है और उसकी यमनियमादि की गई है। इन क्रमों के तीन अङ्ग हैं। तीसरा अङ्ग आसन। इससे पूर्व

किन्तु बिना यमों का पालन किये नियमों का पालन होना असम्भव सा है क्योंकि यमों के बाद नियमों का नम्बर है। नियमों के प्रादुर्भाव में विशेष सम्बन्ध यमों से है। विचार करने से मालूम हो जायगा कि बिना यमों के पालन किए नियमों का अर्जन होना ही बहुत कठिन है। यम नियम दोनों ही मानसिक उन्नति के व्यायाम हैं जो साधक के लिए करने आवश्यक हैं।

यम नियमों के पालन से आगे साधना के लिये अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होती है और साथ ही मानसिक समता भी मिलती है। और तब शरीर तथा प्राण के विकास के प्रयत्न की आवश्यकता होती है ताकि क्रमबद्ध अध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में आगे पीछे कोई रुकावट न आ खड़ी हो। इसके लिये तीसरे अङ्ग आसनों के अभ्यास की आवश्यकता होती है। क्योंकि यदि शरीर में जरा भी अस्वस्थता पैदा हुई तो मानसिक कार्यों या उन्नति को तत्काल धक्का लगेगा और उनमें रुकावट हो जायगी।

इसलिए आसनों द्वारा सदैव उसका प्रतिकार किये रहना चाहिए। शरीर स्वस्थ रहने और नीरोग रहने से आध्यात्मिक और मानसिक कार्यों में कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती, साथ ही व्यवहारिक जीवन भी निर्विघ्न सफल होता जाता है।

मानसिक और शारीरिक दोनों योग मिलकर कार्य करने से दोनों की उन्नति होगी और उससे आध्यात्मिक उन्नति होगी। स्वास्थ्य और शरीर-रक्षा के विचार से शरीर की स्नायुओं (जिनसे शरीर कसा हुआ है) का सुदृढ़ होना अत्यन्त उपयोगी है। क्याकि शरीर के अङ्गों और धातुओ का सम्बन्ध स्नायुओं से है इसलिये उनका विकास भी स्नायुओं के व्यायाम द्वारा ही होगा। आध्यात्मिक उन्नति के लिए बहुत अधिक शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं। उसके लिये तो शरीर स्वास्थ्य के लायक उपयोगी सूक्ष्म अवयवों के विकास की आवश्यकता है। इसीलिये हमारे प्राचीन ऋषि मुनिओ ने आसनों की क्रिया निकाली है।

आसनों की सृष्टि मनुष्येतर प्राणियो की स्वाभाविक क्रियाये देखकर की गई है ऐसा मालूम होता है। इसका एक जबर्दस्त सबूत यह भी है कि बहुत से आसनो के नाम प्राणियो के नाम पर ही रखे गये हैं जैसे मयूरासन, कुक्कुटासन, मत्स्यासन, शलभासन इत्यादि इससे मालूम होता है कि आसनों के सिखलाने मे हमसे भिन्न प्राणियो को विशेष श्रेय है। आसनो पर इसलिए और भी दृढता जमती गई कि उन क्रियाओ के द्वारा ही बिना किसी अन्य उपचारो के अन्य जीव जन्तु स्वस्थ और नीरोग पाए जाते हैं। हम उन प्राणियों

की ओर ध्यान नहीं देते नहीं तो सब बातें समझ में आ जायें और कितने ही आसन हम उन प्राणियों से सीख लें। हमारे ऋषि मुनि प्रत्येक प्राणी को यहाँ तक कि वनस्पति तक को अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से देखते और उनकी क्रियाओं के परिमाणों पर विचार करके उनका सार ग्रहण कर लेते थे। दत्तात्रेय महाराजने अपने चौबीस गुरु इसी प्रकार तो बनाये थे।

अस्तु, दूसरे प्राणियों को जाने दीजिए। उन्हीं प्राणियों को देखिये जो दिन रात आपके सम्मुख रहते हुए क्रियायें करते रहते हैं। उन्हीं से आसनों का तत्व और महत्व समझ मे आ जायगा। और नहीं, कुत्ता बिल्ली को ही ले लीजिये। यह पहले बताया जा चुका है कि आसनों मे स्नायुओं का खिचाव होता है जिससे उनका विकास होता है उनमें दृढता आती है और रक्त-प्रवाह शुद्ध हो जाता है। इससे शरीर मे सुस्ती दूर हो जाती है, चैतन्यता आकर किसी भी कार्य में उत्साह होता है। आपने अक्सर देखा होगा कि कुत्ता जब सोकर उठता है तो प्राय खड़े होते ही पहले वह अँगड़ाई लेता है। आगे के दोनो पैरों को खूब आगे ले जाकर तमाम शरीर और पीछे के दोनो पैरों को पीछे की ओर खींचता है, और जोर से खींचता है। इसी प्रकार पीछे के दोनों पैरों को पीछे की ओर फैलाकर तमाम शरीर को आगे के दोनों पैरों के बल पर जोर से आगे की ओर

व्यायाम होता है जिससे शरीर में स्फूर्ति आती है। आसनों के व्यायाम और अन्य परिश्रम के व्यायामों में अन्तर होता है और इस तरह व्यायाम के दो भेद हो जाते हैं आसन व्यायाम से स्नायुओं का खिंचाव होता है और दूसरे व्यायामों से अङ्गों पर दबाव पड़ता है। व्यायम दोनों ही प्रकारों से हुआ पर परिणाम में भेद हो जाता है। बोझा आदि उठाने या दण्ड बैठक करने या मुद्गर आदि हिलाने में अनेक बार एक ही अङ्ग या स्नायु को एक ही तरह की हरकत करनी पड़ती है इससे स्नायु का विकास तो काफी हो जाता है और बल भी बढ़ जाता है किन्तु वह पूर्ण आरोग्य नहीं होता। क्योंकि एक ही स्नायु में अधिक गति होने से खून उसमें बहुत आजाता है जिसका फल यह होता है कि उस स्नायु के मज्जा तन्तु फट जाते हैं और आरोग्यता नष्ट हो जाती है।

दूसरे दबाव के व्यायाम में हृदय पर भी अधिक दबाव पड़ने के कारण हृदय प्राय दुर्बल हो जाता है जो बहुत हानि का कारण है। किन्तु आसनों के व्यायाम से उपरोक्त कोई भी बातें पैदा नहीं होतीं। आसन व्यायाम में प्राय शरीर के सभी स्नायु खींचे जाते हैं। वे छोटी बड़ी नालियाँ और स्नायु जो शरीर भर में व्याप्त हैं आसन करते समय उनका रक्त प्रवाह

कम हो जाता है और खिचाव के समय तक वह कम ही रहता है इसके पश्चात् पूर्ववत् स्नायु का खिचाव छोड़ देने से जोर से उन स्नायुओं और नालियो में रक्त प्रवाह होता है जिसके कहीं रुके बिना रक्त प्रवाह से सब नालियो के मल धुलकर साफ हो जाते हैं और सर्वत्र समान शुद्ध रक्त का सचार हो जाता है। तमाम शरीर मे स्नायुओं का जाल बिछा हुआ है और मॉस पेशियॉ उन्ही से गॅसी हुई हैं जैसा कि सबसे पूर्व के चित्र से ज्ञात होता है। पहले व्यायाम में रक्त का एकत्रीकरण और दूसरे में रक्त का समान प्रवाह यही दो प्रकार के व्यायामो का भेद और उनका परिणाम है। इससे यह साबित होता है कि सब प्रकार के व्यायामो मे तथा शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति में आसनो का महत्व बहुत अधिक है। और स्वस्थ तथा नीरोग रखने के लिये प्रत्येक मनुष्य को अपने नित्य कार्यों की तरह समय निकाल कर कुछ समय आसनो के लिये भी देना चाहिए।

अधिक काम करने से शक्ति का ह्रास होता ही है।
कब्ज अजीर्ण उसी व्याधि का नाम है जिसमें अग्निमान्द्य होने से भोजन देर में पचता या नहीं पच पाता है। आसनों के अभ्यास से कब्ज की शिकायत दूर हो जाती है किन्तु आसनों के प्रारम्भ मे कब्जियत की शिकायत न होनी चहिये। यदि कुछ हो तो साधारण जुलाब लेकर उसे दूर कर देना चाहिये तब आसन करना चाहिये। भरे पेट या भोजन के बाद ही आसन न करना चाहिये। भोजन करने के बाद आसन करने मे कम से कम २—३ घंटे का समय देना चाहिये। क्योंकि अपक्व अन्न पेट में रहने से आसन करते समय वह पक्वाशय से आमशय मे आ जायगा तो पेट में दर्द पैदा हो सकता है। दूसरे शरीर भारी होने से उसे यथेच्छ घुमा फिरा भी न सकेंगे, आराम की इच्छा होगी। पढ़ने से मालूम हुआ कि आसनों से वायु का कितना सम्बन्ध है अत: आसन करने का स्थान खुला हुआ, साफ़ शुद्ध वायु वाला होना चाहिये ताकि शरीर के भीतर वही वायु अच्छी तरह प्रवेश कर सके जो खून को शुद्ध करने वाली है। बन्द या गन्दी जगह यह बात नहीं हो सकती।

आसन करने के लिये स्थान भी सुरक्षित और समतल चाहिये, ऊँचा नीचा स्थान ठीक नहीं। समतल स्थान

में भी कुछ आसन बिछा लेना चाहिये जो न बहुत मुलायम हो न कड़ा। तह किया हुआ कम्बल इसके लिये बहुत उपयुक्त है। ये दोनों ही बातें न होने से शरीर को बाधा पहुँच सकती है। स्थान समतल न होने से शरीर टेढ़ा मेढ़ा हो सकता है। साथ ही किसी अङ्ग को मोच आ जाने का भय है। आसन न बिछाने से शीर्षासन आदि में सिर के नीचे अधिक कड़ा होने से मस्तिष्क को धक्का पहुँचेगा।

आसन करने का सब से अच्छा समय प्रातःकाल और सायंकाल है। इस समय शरीर में थकावट नहीं होती है। शौचादि से निवृत्त हो जाने के कारण शरीर साफ और हलका रहता है। दोनों समय, नहीं तो, प्रातःकाल ही आसन का सर्वोत्तम समय है। तड़के उठ कर पहले शौचादि से निवृत्त हो जाना चाहिये और बहुत अच्छा तो यह है कि स्नान भी कर लिया जाय फिर आसन करे तो बड़ा लाभ होगा। चित्त प्रसन्न और उत्साहित रहेगा दो ढाई घंटे में ही कड़ाके की भूख लगेगी। दूसरे कार्यों में स्फूर्ति रहेगी। हाँ, आसन करते समय शरीर पर लँगोट के सिवा और वस्त्र न होना चाहिये ताकि रक्त प्रवाह अच्छी तरह हो, अंगचालन ठीक हो। यदि जाड़ा बहुत हो या कोई कारण विशेष हो तो मोजे जाँघिया और सटी हुई बनियाइन या गंजी पहनी जा सकती है
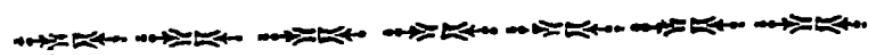
प्रारम्भ में ही बहुत समय तक कई आसन या एक ही आसन न करना चाहिये, न कोई आसन शीघ्रता पूर्वक वेग से करना चाहिये बल्कि धीरे धीरे प्रत्येक आसन में आसानी के साथ थोडा थोड़ा समय दे कर क्रमश उसे बढाना चाहिये और शक्ति से अधिक परिश्रम भी न करना चाहिये।

भोजन का भी ध्यान रखना चाहिये। इसके सम्बन्ध मे अलग प्रकरण लिखा गया है।

प्राणायाम के साथ २ यदि आसनो का अभ्यास किया जाय तो विशेष लाभकारी है। हाँ, यदि प्राणायाम अलग ही किया जाता हो तो आसनो के साथ उसकी कोई आवश्यकता नही। आसन के साथ हल्का दबाव का व्यायाम भी किया जाय तो अच्छा है।

गृहस्थ को सदैव ही ऋतुगामी होना चाहिये। अति का परिणाम सर्वत्र ही बुरा होता है। स्त्री पुरुष के विशेष प्रसंग से भी हानि होती है। इससे आसनों को पूरा और शीघ्र लाभ तभी होगा, जब हम अधिक ब्रह्मचर्य से रहेंगे।

जहाँ तक हो सके बीमार को आसनों के दिनों में औषधि सेवन न करना चाहिये। और अतिप्रवास, अत्यधिक परिश्रम, रात मे अधिक जागरण आदि तो किसी को भी न करना चाहिये। तभी आसनो से पूर्ण लाभ होता है।

१६—आसन चिकित्सा

रोग निवारण के लिये जिस प्रकार औषधि-चिकित्सा ,जल चिकित्सा, सूर्य चिकित्सा आदि अनेक चिकित्सायें हैं उसी प्रकार आसन-चिकित्सा है। आसन-चिकित्सा को मैं सब चिकित्साओं से ऊपर और श्रेष्ठ मानता हूँ। इसका पहला सब से जबर्दस्त सबूत हमारे वे ऋषि मुनि और पूर्वज हैं जो आसन चिकित्सा (योगासन) द्वारा स्वस्थ, नीरोग और दीर्घ जीवी होते थे। दूसरी बात यह है कि अन्य चिकित्साओं में केवल रोग दूर होता है पर आसन-चिकित्सा में रोग भी दूर होता है और फिर रोग नहीं होता। शरीर स्वस्थ हृष्ट पुष्ट रहता है नीरोगी इस चिकित्सा से कभी रोगी हो जाय यह बहुत कम सभव है। तीसरी बात यह है कि और चिकित्साओं में बहुत सी झंझटे और दाम खर्च करने पड़ते हैं। सूर्य-चिकित्सा में भी सूर्य भगवान की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। बरसात हुई तो बस, रहे।

आसन-चिकित्सा में ये एक भी झंझटे नहीं। न किसी वस्तु की आवश्यकता है। कहीं भी किसी रूप में हो आसन चिकित्सा सरलता पूर्वक की जा सकती है। इस पर देश काल ऋतु का कोई असर नहीं पड़ता। यह सदैव लाभकारी है।

रोगों को नीरोग और नीरोगों को स्वस्थ रखने वाली है। यों तो आसनों में प्रत्येक आसन के लाभ लिखे ही जायँगे किन्तु यहाँ संक्षेप में यह लिखा जाता है कि किन रोगों में कौन २ सा आसन लाभकारी होगा और उसमें पथ्यापथ्य का कैसा विचार और सहायता की आवश्यकता होगी —

अरुचि और अजीर्ण—भोजन किये हुये अन्न का अच्छी तरह न पचना अजीर्ण कहलाता है और अजीर्ण के कारण मुख का स्वाद बिगड़ा रहना और खाने पीने की इच्छा न होने का नाम अरुचि है। साधारण रीति से जठराग्नि नित्य जितना भोजन पचा सकती है उतने ही समय में उससे अधिक भोजन पचाने के लिये वह अग्नि मन्दी है। किसी २ को मंदाग्नि आनुवंशिक भी होती है। वह चिरसाध्य है। अस्वस्थता या अन्य किन्हीं कारणों से अधिक भूख की अपेक्षा जब हम अधिक खा जाते हैं। या स्वादिष्ट भोजन होने पर साधारण परिमाण से अधिक खा लेते हैं या गरिष्ट पदार्थ खा लेते हैं जो देर से पचें तो उस भोजन के लिये अग्नि मंदी हो जाती है। मंदाग्नि से अजीर्ण और अजीर्ण से अरुचि पैदा होती है। व्यायाम करने वाले व्यायाम द्वारा अधिक भोजन को भी पचा लेते हैं।

इसका साधारण उपाय तो यही है कि परिमाण से अधिक

न खाना चाहिये किन्तु जब कभी यह शिकायत हो तो नीचे लिखे आसन पूर्ण लाभकारी होंगे। यदि नित्य आसन किये जायँ तो शिकायत दूर होकर फिर पैदा ही न होगी। शीर्षासन मयूरासान, मत्स्यासन, सर्वाङ्गासन, पश्चिमोत्तानासन, जानुशिरासन, ऊर्ध्वसर्वाङ्गासन, बद्ध पद्मासन। थोड़ा भोजन और फलाहार दुग्धाहार ही इसके पथ्य हैं। आनुवंशिक मन्दाग्नि में पथ्य की विशेष आवश्यकता है।

कोष्ठबद्ध—अजीर्ण होने से बद्धकोष्ठ भी हो जाता है। दस्त साफ खुल कर नहीं होता। इसलिये इसमें ऊपर लिखे आसन करने चाहिये। शीर्षासन अधिक करना चाहिये। प्रातः काल बडे तड़के उठकर आध सेर के करीब ताजा पानी पीना लाभकर है। यदि नाक का एक छेद बन्द करके दूसरे से पिया जाय तो अधिक अच्छा है।

उदरशूल—उपरोक्त शिकायतों और कारणों तथा कच्चा अन्नादि खा लेने से पेट दर्द हो जाता है। इसके लिये पेट पर हल्की बेसन की मालिश करनी चाहिये और पूर्वोक्त आसन करने चाहिये। शीर्षासन और मयूरासन विशेष लाभकारी है।

खट्टी डकार—अरुचि और अजीर्ण से आने लगती हैं इसलिये पूर्वोक्त आसन लाभकारी हैं।

कृमि दोष—गन्दगी के कारण खाने पीने मे अदृश्य कीडे पेट में पहुँच कर और कीड़े पैदा कर देते हैं तो कृमि रोग हो जाता है। आसन करनेवाले को कृमि दोष नहीं होता। मत्स्येन्द्रासन से इसमे वहुत लाभ होता है। शीर्पासन चक्रासन, सर्वाङ्गासन, जानुशिरासन और गर्भासन लाभकर है।

खांसी स्वास—के लिये शीर्पासन तथा ऊर्ध्व सर्वाङ्गासन सर्वोत्तम औपधि है। जानुशिरासन भी लाभकारी है।

जुकाम—मे जल की नेती के साथ साथ सर्वाङ्गासन और शीर्पासन विशेप लाभकारी हैं।

दन्त रोग—दाँतों को नित्य ख़ूब साफ रखने से ही दन्त रोग दूर रहता है। शीर्पासन लाभकारी है।

तापतिल्ली—शीर्पासन, चक्रासन, वृश्चिकासन, गर्भासन, सर्वाङ्गासन, मत्स्येन्द्रासन लाभकारी हैं।

जोड़ दर्द या घुटने का दर्द—शीर्पासन के साथ साथ सेक और तेल की मालिश करनी चाहिये। जाँघ मे दर्द हो तो जानुसिरासन ऊर्ध्व सर्वाङ्गासन, पश्चिमोत्तानासन, वातयनासन करना चाहिये।

थकावट—में दण्डासन, शवासन करना चाहिये।

जंभाई—बहुत आती हो तो कोई भी आसन कई बार जल्दी जल्दी कर लेना चाहिये।

जीर्ण ज्वर—में कोई भी व्यायाम लाभकारी नहीं है आसनों में इसके लिये चक्रासन, मयूरासन, जानुशिरासन और शीर्षासन लाभकारी हैं।

शिरदर्द—कई प्रकार का होता है। उनमें पेट साफ रखने का प्रयत्न करना चाहिये और शीर्षासन तथा सर्वाङ्गासन करना चाहिये।

पीनस—में भी शिरदर्द के आसन करना चाहिये। नाक से ताजा पानी खूब पिया जाय तो पूरा फायदा होता है

रक्तदोष—खून बिगड़ने में शीर्षासन, कठ बन्धासन, ऊर्ध्व सर्वाङ्गासन और सर्वाङ्गासन लाभकारी हैं।

सूजन—जिस अंग में सूजन हो उसी पर जोर पड़ने वाला आसन करना चाहिये।

मेदोरोग—पद्मासन मयूरासन, गर्भासन, वृश्चिकासन, सर्वाङ्गासन चक्रासन करना चाहिये।

आलस्य—दूर करने के लिये सर्वांङ्गासन और जानु-शिरासन अच्छा है।

कमरदर्द—सर्वांङ्गासन जानुशिरासन, पश्चिमोत्ताना-सन लाभकारी है। मालिश और सेक इसमे भी होना चाहिये,

बाल रोग—जिसके बाल असमय सफेद हो गये हों उसे शीर्षासन और ऊर्ध्व सर्वंगासन से पूरा लाभ होगा। पन्द्रह महीने मे नियम पूर्वक आसन करने से बाल काले होते हैं

दिमाग़ की कमजोरी व अशक्तता—को दूर करने के लिये शीर्षासन, ऊर्ध्व सर्वांङ्गासन, पद्मासन, मयूरासन, चक्रासन करने चाहिये।

स्वप्न दोष—शीर्षासन, सर्वांङ्गासन, जानुशिरासन करने चाहिये। रात मे सोते समय सिर का तालू और हाथ पैर धोकर सोना चाहिये।

मिरगी—में शीर्षासन करने से लाभ होगा।

कुष्ठ—में शीर्षासन और सर्वांङ्गासन लाभकारी है।

लाल चट्टे—जो प्राय. बड़ी मुश्किल से मिटते हैं सर्वां-गासन और शीर्षासन से दूर हो जाते हैं।

१७—आसन-१-शीर्षासन

विधि—"आसनों के पहले" शीर्षक नामक प्रकरण में बतलाया गया है कि कोई कम्बल आदि बिछा कर आसन करना चाहिये ताकि जमीन बहुत सख्त न मालूम पड़े। इस शीर्षासन में तो और भी मुलायम स्थान की आवश्यकता है। क्योंकि इसमें सिर के ही बल तमाम शरीर को सँभालना होता है। मस्तिष्क, जो शरीर का राजा है, जमीन सख्त होने से ठेस खा सकता है। इस लिये कम्बल को खूब तह। कर उस पर या सिर के नीचे अँगोछे आदि की इँडुरी रख कर शीर्षासन करना चाहिये। यों तो किसी आसन में विशेष कारण के बिना लंगोट के अलावा दूसरा वस्त्र न पहरना चाहिए पर शीर्षासन में तो लंगोट भी ढीला ही रखना चाहिए ताकि रक्त के प्रवाह में किसी तरह की रुकावट न हो। इसके करने की विधि—

पहले घुटने टेककर आसन पर बैठ जाइये। फिर दोनों हाथों की अँगुलियाँ आपस में फँसाकर उन्हें कोहनियों तक अपने सामने जमीन में अच्छी तरह जमा कर रखिये। ये हाथ इस प्रकार सिर्फ सिर को इधर उधर से सहारा टेकर शरीर का तोल सँभालने के लिये रखे जाते हैं। शरीर का भार इन पर न पड़ना चाहिये वह तो सिर पर रहे। अब सिर को दोनों

मोड़े हुए कमर तक शरीर ख़ूब सधने लगे और बिलकुल सीधा होने लगे तो पैर ऊपर को खोलने का अभ्यास करना चाहिये। जब पहली प्रकार का शीर्षासन ख़ूब अच्छी तरह होने लगे तभी अन्य प्रकार करने चाहिये।

इस आसन में जल्दी हरगिज न की जाय नहीं तो हानि की विशेष संभावना है। कारण—शरीर इधर उधर झोंका खा जाने से मस्तिष्क पर ठेस लग जायगी, गर्दन मोच खा जायगी, शरीर में चोट लग जायगी या हाथ पैरों में मोच आ जायगी इसलिये धीरे धीरे सावधानी से करना चाहिए। शुरू में चार पाँच दिन शीर्षासन को पन्द्रह सेकिंड से तीस सेकिंड तक करना चाहिये फिर प्रति सप्ताह आधा, एक, दो, तीन मिनट क्रम क्रम से बढ़ाते हुए बारह मिनट तक किया जाय और छै महीने बाद आध घण्टे तक तथा एक साल पश्चात् एक घण्टे तक सधने का अभ्यास बढ़ाया जाय। शीर्षासन के समय सांस बड़ी शांति से साधारण तौर पर लेनी चाहिये। शीर्षासन ठीक होने लगे तब यदि शीर्षासन से पहले और पीछे दो चार प्राणायाम करलिये जाया करें तो विशेष लाभ हो।

लाभ—योगशास्त्री, ऋषि, मुनियों और आसनों के अभ्यासियों ने शीर्षासन की महिमा बहुत गाई है और इसे ही सब

से अधिक महत्व दिया है। इसे सब आसनों का राजा, सबसे बढ़ कर और तत्काल फल देने वाला बतलाया है। इसीलिये आसनों मे इसी का अधिक प्रचार और चर्चा हुई। प्रचीन योगग्रन्थों में जिस विपरीत करणी मुद्रा को बहुत महत्व दिया गया है उसकी क्रियाओं से यह निश्चय होता है कि शीर्पासन ही विपरीत करणी है और इसे ही कपालासन भी कहते हैं।

शरीर को रोगो से मुक्त करने और निरोग को स्वस्थ रखने मे यह आसन लासानी है। अद्‌भुत शक्ति रखता है। आवश्यकता केवल विश्वास पूर्वक अभ्यास की है। घेरंड संहिता में जो इस आसन को मृत्यु और बुढापे से रक्षित करने वाला बताया है उसका तात्पर्य यही है कि इसके अभ्यास से मनुष्य विना पूर्ण आयुष प्राप्त किये न तो रोग से मृत्यु पा सकता है और न अस्वस्थ रह सकता है। वास्तव में बात भी ऐसी ही प्रतीत होती है क्योंकि मानव-रचना में उत्तरोत्तर ऊपर के अङ्ग अधिक महत्त्व के होते गए हैं। शुक्र (वीर्य) जो सब का राजा है हृदय में रहता है। कंठ मे एक गाँठ होती है जो शरीर के बढ़ाने और उसके रोग-कृमियों को दूर करने में बड़े महत्व की मानी गई है। उसके ऊपर और आसपास शरीर के उपयोगी ऐसी ग्रन्थियाँ हैं जिनसे शरीर के स्वास्थ्य मे पूरी सहायता मिलती है। ऊपर मस्तिष्क है जिसके विपय में कुछ लिखना व्यर्थ है।

यह भी सब जानते हैं कि पतली चीज़ नीचे की ओर बहती है और रक्त ही शरीर को कांतिवान जीवनप्रद और स्वस्थ रखने में समर्थ है ऐसा जानना चाहिये । यदि कुछ देर हाथ ऊपर उठाये रहिये तो मालूम होगा कि ऊपर का हिस्सा नीचे की अपेक्षा पीला और कांति रहित सा हो गया । क्यों ? इसीलिये कि खून अपने स्वाभाविक गुण से नीचे की ओर उतर आया और उसके न रहने से उस अङ्ग की वह कांति नहीं रही। इससे यह स्पष्ट समझ में आ जाता है कि शरीर को स्वस्थ, कांतिवान और नवजीवन युक्त रखने के लिये सब शरीर में स्वाभाविक प्रवाह से पहुँचाने और उसे शुद्ध रखने की कितनी आवश्यकता है । उसकी पूर्ति शीर्षासन से होती है ।

मनुष्य सदैव पैरों के बल खड़ा रहता है इससे उसका रक्त प्रवाह भी हमेशा पैरों ही की ओर रहता है । शीर्षासन से रक्त-प्रवाह बिलकुल बदल जाता है। देखने से मालूम होगा कि शीर्षासन करने पर मुख, सिर, छाती, आँखे, कान आदि ऊपर के हिस्से अधिक लाल हो जाते हैं। इससे उन अङ्गों का रक्त प्रवाह तो शुद्ध हो ही जाता है साथ में उन अङ्गों के रोग नष्ट होकर उनकी शक्ति बढ़ती है । जिनके पैर सुन्न हो जाया करते हैं उनको शीर्षासन से लाभ होता है । मस्तिष्क में शुद्ध खून अधिकता से पहुँचने से बुद्धि तीव्र और स्मरण शक्ति बढ़

जाती है। तरल होने से जो वीर्य नीचे की ओर प्रवाहित होता है, शीर्षासन से वही ऊर्ध्वगति होने से मनुष्य को कांतिमान बनाता है। वीर्य दोष, स्वप्न दोष नष्ट होकर उसका स्तंभन होता है। जिसके बाल असमय ही सफेद हो गये हैं वह यदि एक वर्ष भी शीर्षासन करे तो निश्चय बाल काले हो जाते हैं शीर्षासन से उदर विकार नष्ट हो कर जठराग्नि बढ़ती है दृष्टि दोष दूर होता है। बाहर बढा हुआ, या तिल्ली यकृत से रोगी का पेट रोग दूर होकर शुद्ध हो जाता है। अजीर्ण आदि की शिकायत कभी नहीं होती।

सारे शरीर मे रक्त पहुँचने का कार्य हृदय को करना पडता है, नहीं तो ऊपर को खून कैसे पहुँचे। हृदय को इसमें बहुत परिश्रम करना पडता है, शीर्षासन से हृदय को विश्राम मिलने से वह आगे अधिक काल तक कार्य करता है जिससे मनुष्य की आयु बढ़तो है और सब शरीर में वेग से शुद्ध रक्त का प्रवाह होने से मनुष्य की शारीरिक कमजोरी, छाती के, गले के, सिर के, पैरों के, पेट के, मुख के दोप व रोग दूर होते हैं और वह एक नए प्रकार के आनन्द का अनुभव करता है।

शीर्षासन के अभ्यासी को वृद्धत्व कष्ट नहीं दे सकता, न सहसा भासित ही होता है। मेदोरोग, अर्श रोग, वृषण वृद्धि, पीनस रोग, क्षय रोग, पांडु रोग, जीर्ण ज्वर, कर्ण रोग,

अलावा सिर दर्द, मेदो रोग, पांडु रोग, जंघा दोष, कृमि दोष, कमर दर्द आदि में भी यह आसन लाभ पहुँचाता है। स्वास्थ्य रक्षा के लिये यह आसन अत्यन्त उपयोगी है।

३—ऊर्ध्व सर्वाङ्गासन

विधि—यह आसन भी सर्वांगासन के ही समान है। अन्तर केवल इतना है कि सर्वांगासन में पैरों को सिर के पीछे ले जाकर जमीन से लगाना पड़ता है। ऊर्ध्व सर्वांगासन में पैर सीधे ऊपर को खड़े रखने पड़ते हैं, समस्त शरीर भी जमीन से उठाकर केवल कंधा और ग्योंड़ी पर सारे शरीर को साधना होता है। सहारे के लिये हाथ कोहनियों से मोड़कर कमर में लगा लेना चाहिये। ठोढ़ी खूब दबी हुई कंठ के गड्ढे से सटी रहनी चाहिये। कोई कोई इसी को सर्वांगासन कहते हैं। कोई विपरीत करणी या विपरीतासन भी इसी को कहते हैं।

समय क्रम—प्रारम्भ में आधे मिनट से शुरू करके ८-१० मिनट तक का अभ्यास बढ़ाना चाहिये। प्रति सप्ताह आधा मिनट बढ़ाया जाय।

लाभ—यह आसन भी सर्वांगासन के ही समान लाभकारी है। इससे हृदय को विश्राम मिलता है। रक्त शुद्ध होकर

उसका प्रवाह वेग से होने लगता है। यह आसन वहुत से विकारों को नष्ट करने में वहुत उपयोगी है। पेट के समस्त विकारों को दूर करता है। शुरू मे ४-५ दिन इस आसन के करने से पेट में कुछ गडवड मालूम होती है। किसी किसी के कुसकन भी होने लगती है पर चार पॉच दिन वाद ही सव शान्त होकर लाभ होने लगता है, इसलिये प्रारम्भिक विकार से किसी को घवड़ाकर आसन करना छोड न देना चाहिये। यह आसन अजीर्ण, मदाग्नि, आँतों के रोग, आमवात, कमर दर्द, कृमि दोष, गंडमाला, जंघा दोष, जीर्ण ज्वर, तिल्ली, पांडु रोग, मेदोरोग, वृषण वाढ आदि रोगों को लाभ पहुँचाता है।

वालों की सफेदी, ख़ून की ख़राबी, वुद्धि दोष, पीनस, जुकाम, गुल्म रोग, श्वास, खाँसी, वीर्य रक्षा में तो यह आसन वहुत ही लाभकारी सिद्ध हुआ है।

४—जानुशिरासन

विधि—आसन पर वैठकर पहले पैरों को लम्वा फैला दीजिये। अव वायें पैर को मोड़कर, पैर का तलवा जंघा की जड़ मे जंघा से चिपका दीजिए। एंड़ी ठीक तोंदी के सामने रहे। इसके वाद फैले हुये पैर के अगूठे को दोनों हाथों से पकड़कर उसी पैर के घुटने पर सिर रखकर वैठिए। कुछ देर वैठने के

दूर होते हैं। आँतों के समस्त दोषों को यह आसन लाभकारी होता है।

५–पश्चिमोत्तानासन

विधि—आसन पर वैठकर पहले पैर लम्बे फैला दीजिए दोनों पैर मिले रहे। घुटने मुडे न हों बिलकुल सीधे रहें। टाँगें जमीन से लगी रहें इसके बाद आगे को झुककर दोनों हाथों से पैरों के दोनों अँगूठों को पकडिए। ध्यान रखिये कि पैर जमीन से जरा भी न उठने पावे। पैरों के अँगूठे पकडकर सिर दोनों घुटनों के बीच में करके प्रयत्न करना चाहिये कि सिर घुटनों पर या उनके भी आगे रखा जाय। यदि बन सके तो हाथ की कोहनियों को जमीन से छुआना चाहिये।

समय क्रम—मोटे शरीर वालों से एकदम यह आसन न हो सकेगा। सिर को घुटनो से मिलाना तो दूर, हाथों से पैर के अँगूठे ही पकडना मुश्किल है। किन्तु निरन्तर के अभ्यास से होने लगता है। शुरू मे पैर फैलाकर और घुटने सीधे रखकर, कमर आगे झुकाकर अँगूठे पकडने का प्रयत्न करना चाहिये। धीरे धीरे पैर पकडने लग जाने पर सिर घुटनों पर रखने का प्रयत्न करना चाहिये। ध्यान रहे कि उकता कर जल्दी में शरीर

में झटका देकर या कमर को अधिक जोर से दबाकर पैर पकड़ने या घुटनों पर सिर रखने की कोशिश न करना चाहिये, उससे हानि होगी। धीरे धीरे पन्द्रह सेकंड से एक मिनट तक प्रति सप्ताह बढ़ाते बढ़ाते पन्द्रह मिनट तक का अभ्यास किया जा सकता है। शारीरिक लाभ के लिये तो ४-५ मिनट तक का ही अभ्यास काफी हैं।

लाभ—इस आसन से पेट और पैरों के स्नायुओं का खिचाव खूब होता हैं और वे फैलाते हैं इससे पेट के विकार दूर होते हैं। बद्ध कोष्ट तो रहता ही नहीं। निकला हुआ पेट पिचक जाता है, जठराग्नि तेज हो जाती है। आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह आसन बहुत लाभकारी है क्योंकि इससे प्राण पश्चिम मार्ग से जाने लगते हैं। इसके अतिरिक्त मेदोरोग, पांडु रोग, तापतिल्ली, जघादोष, कृमि दोष, श्वास, खासी, कमर दर्द, आँतों के रोग और अजीर्ण वालों को भी यह आसन लाभकारी है।

६—मत्स्येन्द्रासन

विधि—पहले आसन पर पैर फैला कर बैठ जाइये फिर बाएँ पैर का पंजा उठा कर दाहिनी जाँघ की जड़ में रखिये। पंजे का तलवा पेट से और एड़ी तोंदी से सटी रहे। अब दाहिना

ापतिल्ली, जीर्ण ज्वर, मेदा रोग, पाँडु रोग, नष्ट होते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह आसन उपयोगी है। स्वास्थ्य ो बढाने वाला है। इसलिये अवश्य इसका अभ्यास करना ाहिये।

७—वृश्चिकासन

विधि—पहले आसन पर बैठ जाइये फिर समानान्तर मे ों हाथ कोहनियो तक जमीन पर जमा दिजिए। पजा खुला इसके बाद धीरे मे पैरो को ऊपर उठाकर घुटनो को मोड़ े ओर लेजाकर सिर के ऊपर जमा दीजिये। सिर विल- ोधा तना हुआ रहे। दृष्टि सामने की ओर और ध्यान ाग्र पर रहे।

समय क्रम—प्रारम्भ मे यह आसन करने के लिये ज का सहारा लेना चाहिये। कोहनियो के बल होकर घुटनों को मोड कर सिर पर ले जाना चाहिये। पर जब सधने लगे तो बिना दीवाल का सहारा लिये अभ्यास ा चाहिये। आसानी से जितनी देर इस आसन पर स्थिर नके—रहना चाहिये। कष्ट मालूम होने लगे तब छोड देना ये।

लाभ—इस आसन से भी शरीर के प्राय. सभी स्नायुओं पर खिचाव पड़ता है। विशेपकर पेट आँतों का भाग शुद्ध हो जाता है। हाथों में ताकत आती है। शरीर बिलकुल हलका हो जाता है। कार्यों के करने में उत्साह बढ़ता है। इसके अतिरिक्त इस आसन से मेदोरोग, तिल्ली, अशक्तता, पांडुरोग कृमिरोग, कमरदर्द, आमवात, अजीर्ण रोग नष्ट होते हैं।

८—मयूरासन

विधि—पहले घुटनों के सहारे आसन पर बैठ जाइये फिर दोनों हाथ जमीन पर साधारण अन्तर से ऐसे रखिए कि पंजे पीछे (भीतर) की ओर रहे, इधर उधर या बाहर कदापि न रहे क्योंकि इस आसन में पेट पर पूरा दबाव डालना है यह पंजे भीतर रहने में ही पड़ेगा। अब दोनों पैरों को पीछे लम्बी फेंक कर पैरों को पंजो के बल साधिये और हाथों की दोनों कोहनियाँ तोंदी के दोनो तरफ लगाकर, छाती और सिर को आगे की ओर दबाते हुए पैरों को जमीन से ऊपर उठाने का प्रयत्न कीजिए। जब पैर जमीन से उठाकर कोहनियों के समानान्तर में आ जाँय तो सिर और छाती को भी सीधा कर दीजिये तात्पर्य यह कि सारा शरीर हाथो की कोहनियो पर

पट की ओर रक्त प्रवाह का वेग होने से पाचन शक्ति बढ़ती है। पाचन शक्ति बढ़ाने और उदर विकार नष्ट करने में यह आसन अद्भुत शक्ति रखता है। इसके अतिरिक्त गुल्म रोग, अजीर्ण, आँतों के रोग, आमवात, कृमि रोग, उदर, शूल, जीर्ण ज्वर, तापतिल्ली, पाडु रोग, अशक्तता, मेदोरोग, में मयूरासन लाभकारी और आरोग्य के कायम रखने वाला है। कहा गया है कि वस्ति क्रिया के पश्चात् यह आसन किया जाय तो अधिक अच्छा है।

९—गर्भासन

विधि—पद्मासन लगाने के बाद जैसा कि कुक्कुटासन में लिखा है दोनों हाथों को जाघों और पिंडलियों की सीध में घुसेड़ दीजिये और इतना घुसेड़ दीजिए, कि कोहनियाँ तक वे पाँव के बाहर हो जायँ। इसके बाद शरीर का तमाम भार केवल चूतड़ों पर छोड़कर हाथों से कानों को पकड़िये। पैरों की पिंडलियें हाथों के भीतर रहेंगी। यदि हाथों को और ऊपर बढ़ाया जा सके तो कान छोड़कर उन्हें गले के पीछे ले जाइये और पीछे ले जाकर दोनों हाथों की अँगुलियाँ आपस में कैंची की तरह फँसाकर हाथों की माला पहन लीजिये। इसे उत्तान कूर्मासन भी कहते हैं।

गर्भासन

और उदर के साथ विकार दूर होते हैं। पेट के सब विकारों को दूर करने और ब्रह्मचर्य से अधिक आयु बिताने की इच्छा रखने वाले को यह आसन अवश्य करना चाहिये।

११—पद्मासन

विधि—पहले पैर फैला कर बैठ जाइये फिर दाहिना पैर उठा कर बाएँ पैर की जाँघ पर रखिए और बायाँ पैर उठा कर दाहिने पैर को जाँघ पर रखिए। दोनो पैरो के तलवे चित्त हो जांय। घुटने बिलकुल जमीन से मिले रहें। अब शरीर को समरेखा में सीधा कर दीजिए। ठोढ़ी सीधा या कंठ के मूल में मिला कर रखिये। दृष्टि सिद्धासन के समान जमा कर रखी जाय तो विशेष लाभकारी है। हाथ सीधे तान कर घुटनों पर रखिये। पंजा चित्त कर हथेली बिलकुल खोल दीजिए। अँगु-लियां सीधी नीचे की ओर रहें। तर्जनी अँगुली और अँगूठा को मिला कर गोलाकर छल्ला की तरह बना लीजिये। संध्या करने में यह पद्मासन और सिद्धासन दोनों उत्तम होते हैं। स्थूल या अनभ्यासी से सहसा पद्मासन न हो सकेगा इसलिये पहले अर्द्ध पद्मासन करना चाहिये। यानी एक पैर जांघ पर और दूसरा गुदा तथा अंडकोश के बीच में रखना चाहिये। थोड़ी थोड़ी देर बाद पैर बदलते रहना चाहिये।

ये। पीठ को बिलकुल सीधा तान दीजिए और दृष्टि नासिका अग्रभाग पर जमाइये। ठोढी को कंठ के मूल में गडा दीजिये।

समय क्रम—बहुतों के हाथ शुरू में ही पीठ के पीछे निकर अँगूठा न पकड सकेंगे। इसका कारण उनकी उन नसों का शुद्ध और पूरे फैलाव में न होना है। इसलिये जब तक दोनों पैरों के अँगूठे पकडे न जासके तब तक एक ही पैर का अँगूठा पकड कर अभ्यास बढाना और दूसरे के पकडने का यत्न करना चाहिये। १-२ महीने में दोनों अँगूठे पकडाई देने लगेंगे। बद्ध पद्मासन का लाभ २ ३ मिनट आसन लगा कर बैठने से नहीं होता इसके लिये आध घंटे या घंटे भर तक का अभ्यास बढाना उचित है। हाँ प्रारम्भ में दो मिनट से शुरू करके प्रति सप्ताह तीन मिनट तक बढाया जा सकता है।

लाभ—ध्यान की दृष्टि से तो पद्मासन उत्तम है किन्तु केवल आरोग्य लाभ की दृष्टिसे बद्ध पद्मासन बहुत उत्तम है। इससे पीठ का टेढापन दूर होकर उसमें सीधापन और सरलता आ जाती है पृष्ठवंश का मज्जा प्रवाह शुद्ध होने से तज्जन्य रोग नष्ट होते हैं। तिल्ली और यकृत बढ़जाने पर बद्ध पद्मासन से पूरा लाभ होता है उसके अतिरिक्त इससे पेट के समस्त विकार, अरुचि, बदहज़मी, कोष्टबद्ध, पेट का दर्द,

आमबात, खट्टे मीटे डकार, आँतों के रोग पांडु रोग, मेदोरोग दूर होते हैं। यदि बद्ध पद्मासन के समय गुदा और लिंग की नस नाडिया ऊपर को खीचो जाय तो वीर्य के दोप दूर होते हैं स्वप्नदोष वन्द होता है। यदि प्राणायाम पूर्वक यह आसन किया जाय तो प्रारम्भ का क्षय रोग तक दूर होता है। नित्य १ से १॥ घण्टे तक बद्ध पद्मासन करने से कैसा ही अजीर्ण हो ५ ६ महीने मे अवश्य दूर हो जाता है।

(१४) मत्स्यासन

विधि—आसन पर बैठ कर पहले पद्मासन की शकल मे हो जाइये। फिर चित्त लेट जाइये और हाथों की कोहनियों को एक एक कर के जमीन पर लगा दीजिये। अब गर्दन को बाहरी ओर फेकते हुए सिर के तालू को अच्छी तरह जमीन से टिका दजिये, गर्दन उठी रहे। दोनों हाथों से दोनों पैरों के अँगूठे पकड लीजिये। प्रयत्न कीजिये कि घुटने जमीन से न उठने पावे। पेट और कमर के भाग को जितना ऊपर उठा सकिए उठाइये और स्थिर हूजिये। कोई कोई इस आसन में हाथों को, पैरो के अँगूठे न पकडकर गुफनी बाधकर सिर का तकिया बना लेते हैं।

द्विपाद शिरासन

प्रयत्न कीजिये, गर्दन भी कुछ झुका दीजिये। एक पैर गर्दन पर रखने के बाद उसी प्रकार दूसरे पैर को भी धीरे धीरे ले जा कर रखिये। अब हाथों को जोड लीजिये। पूरा शरीर चूतड़ों के बल रहे।

समय क्रम—आसन शुरू करने के दिन से ही पैर का गर्दन पर चला जाना बहुत कठिन है। इसलिये शीघ्रता न करनी चाहिये न अकुलाना चाहिये। नित्य थोडा २ गर्दन की ओर ले जाने का प्रयत्न करना चाहिये। कुछ दिन के अभ्यास से पैर गर्दन पर पहुंचने लगेगा तब कठिनता न मालूम होगी। गर्दन पर पैर रखने का जब अभ्यास हो जाय तो अभ्यास के अनुसार एक बार में ३० सेकड से लेकर पाँच मिनट तक यह आसन किया जा सकता है।

लाभ—इस आसन के करने से पांव जंघा और गर्दन की स्नायुओं का खिचाव होता है। इससे उन स्थानों की नस नाड़ियों में बल और निर्बलता प्राप्त होती है जंघा संधि में कोई दोष पैदा हो गया हो तो इस आसन से लाभ पहुँचता है।

१९—चक्रासन

विधि—आसन पर पीठ के बल लेट जाइये। फिर

१७–दंडासन

विधि—आसन पर लेटजाइये। दोनों हाथ और पाव पास पास मिले हुये रहें। मुख छत की ओर कीजिए। शरीर को बिलकुल ढीला कर दीजिए। सिर से पाव तक सारा शरीर चुपचाप एक सीध मे भूमि पर डंडे की तरह पड़ा रहे। मन के विचार भी बिलकुल हटा देना चाहिये। श्वास भी इतने धीरे लीजाय कि उसका खीचना छोड़ना मालूम न हो। आखे बन्द करके निर्व्यापार पड़े रहिये।

समय क्रम—नित्य आवश्यकतानुसार १० से १५ मिनट तक परिश्रम करने पर किसी भी समय किया जा सकता है।

लाभ—दंडासन के करने से थकावट बिलकुल दूर होकर शरीर मे स्फूर्ति आ जाती है। शरीर चैतन्य, बिलकुल हलका हो जाता है। खूब परिश्रम करने के बाद जब थकावट मालूम हो इस आसन को कर लेना चाहिये इसके अभ्यासी अधिक से अधिक परिश्रम करके भी नही थकते। इसमे मुख्य बात शरीर को इन्द्रिय, मन और आत्मा के व्यापारो से हटाकर बिलकुल शिथिल (ढीला) कर देने की है।

तडासन
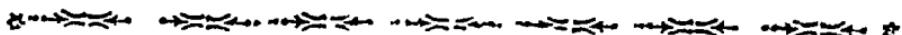
दोनों पैर मिले रहें और घुटने सीधे हों। हाथ दोनों सीधे जाँघों से मिला लीजिए। अब एक पाँव धीरे धीरे ऊपर को उठाइये इस बात का ध्यान रहे कि घुटना मुड़ने न पावे, सीधा रहे। जबतक पाँव दूसरे पाँव के साथ समकोण में न आजाय, उठाते जाइये और बिलकुल सामने तान दीजिए। पैर सीधा तन जाने पर, ताने हुए पैर की तरफ वाला हाथ कमरपर रखिए और दूसरे हाथ से पैर का अँगूठा पकड़िये। थोड़ा ठहर कर उस पैर को जमीनपर रख दीजिए और दूसरा पैर उसी तरह उठाइये। इसी प्रकार कई बार यह आसन कीजिए। इस तरह अभ्यास हो जाने पर पैर को और ऊँचा उठाना चाहिये और प्रयत्न करना चाहिये कि पैर या घुटना नाक से छू जाय।

समय क्रम—प्रारम्भ मे यदि इस आसन के करने में अधिक कठिनाई हो तो दीवार के सहारे खड़े होकर या बिलकुल सीधे लेटकर भी अभ्यास किया जा सकता है। शुरू मे पैर तानने के लिये या तना हुआ पैर साधने के लिये मेज कुरसी आदि किसी चीज का सहारा लिया जासकता है। (पैर सीधा करके उस पर रख दिया जाय)

यह आसन कठिन है इसलिये बहुत धीरे धीरे इसका अभ्यास करना चाहिये। पहले चौथाई मिनट आध मिनट से
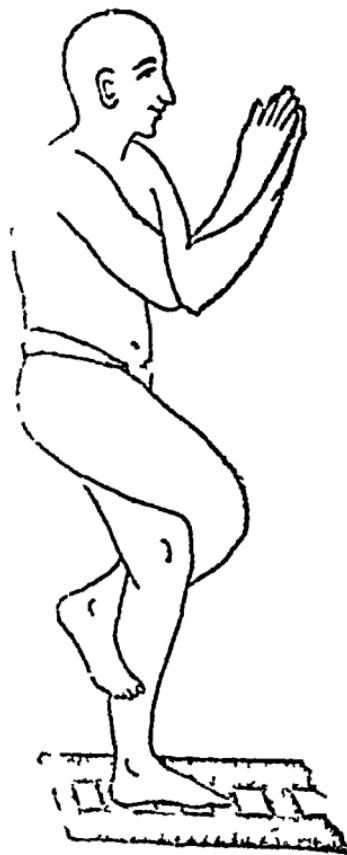
गरुडासन

कुक्कुटासन

हाथों को लाकर बेल की तरह लपेटिए। हाथों की दोनों हथेलियां मिलाकर गरुड की चोंच की तरह शकल बनाइये।

समय क्रम—शुरू में थोड़े समय जिसमें कठिनाई या परिश्रम न मालूम हो, करना चाहिये फिर अभ्यास के अनुसार समय बढ़ाना चाहिये।

लाभ—इस आसन से हाथ पैर की स्नायुओं पर अच्छी तरह खिंचाव पडता है और वे शुद्ध होते हैं। इससे हाथ पैर तथा घुटने का दर्द भी अच्छा होता है। इस आसन से शरीर का तमाम भार एक ही पैर पर आ जाता है। इससे उस पैर के स्नायुओं को छोड़ कर बाकी को विश्राति मिलती है। उस पैर की पिंडली और स्नायु मजबूत होते हैं। स्नायुओं में रक्त प्रवाह अधिक होने से हड्डी भी बढती है।

२१—कुक्कुटासन

विधि—पहले पद्मासन लगाकर बैठ जाइये। पैरों को जहां तक हो सके कमर की ओर खींचे रहिये। अब जांघ और पिंडली की सन्धि में अपने हाथ डालिये। पहले दाहिने ओर की संधि में बल पूर्वक दाहिना हाथ घुसेड़ दीजिये फिर इसी तरह बल पूर्वक बाये पैर की संधि में बायां हाथ घुसेड़

दीजिये। इसके वाद दोनों हाथों के पजे का समानान्तर में सामने जमा दीजिये। अगुली आगे की ओर रहें। और शरीर को धीरे २ उठाते हुये पञ्जों के वल तौलिये। हाथ कुछ मुड जायँगे, शरीर भी कुछ झुक जायगा। इस प्रकार विलकुल हाथों के आधार पर होकर गर्दन और पीठ को जितना सीधा सतर कर सकिये—कीजिये। जिनके पैर वहुत स्थूल हो, वे इस आसन को इस तरह कर सकते हैं कि पहले उकडू वैठ जाइये। फिर दोनो हाथ सामने समानान्तर से जमा दीजिये। हाथ घुटनों के भीतर रहे। अव छाती आगे झुकाकर शरीर का बोझ हाथो पर छोड़िये और एक एक कर के दोनों पैर जमीन से उठा दीजिये। दहिना पैर दाहिने हाथ की कोहनी के नीचे; वार्या पैर बाएं पैर की कोहनी के नीचे लगाइये। पैरों को साधने के लिये पैरों की अगुलियों से कोहनी के नीचे की स्नायु की चुटकी भर लीजिये।

समय क्रम—इस आसन के दोनों ही प्रकार कुछ कठिन है। इसलिये धीरे धीरे करना चाहिये। पहले प्रकार में पहले केवल हाथों के फसाने का प्रयत्न करे, फिर शरीर साधने का प्रयत्न करे। जब शरीर सधने लगे तब आधे मिनट। ८—१० मिनट तक स्थिर रहने का अभ्यास करना चाहिए।

प्रति सप्ताह आधा मिनट बढ़ाया जा सकता है।

लाभ—इस आसन से तमाम शरीर का भार केवल हाथों पर आ जाता है। छाती और हाथों के स्नायु खिंच कर दृढ़ते हैं। जिससे उन अङ्गों में स्फूर्ति आती है और वे मजबूत होते हैं। प्राण वायु शुद्ध होता है। अशक्तता को दूर करने में यह आसन सहायक होता है।

(२२) बकासन

विधि—पहले दोनों हाथों के पंजे आसन पर फैला कर रखिए। अपने घुटनों को आहिस्ता आहिस्ता हाथों की भुजाओं पर उठाइये और पावों समेत शरीर का सब भार झुककर हाथों पर छोड़ दीजिये केवल हाथों के पंजे जमीन पर रहें और सारा शरीर ऊपर उठा हुआ हाथों के सहारे रहे। दोनों पैरों के पंजे आपस में मिले रहने चाहिये। यह आसन घुटनों को हाथों के बाहर या हाथों के भीतर रखकर भी किया जा सकता है।

समय क्रम—धीरे धीरे अभ्यास बढ़ाते हुए आध घंटे तक इस आसन का अभ्यास किया जा सकता है।

लाभ—इस आसन से हाथों की मजबूती बढ़ती है।

बकासन
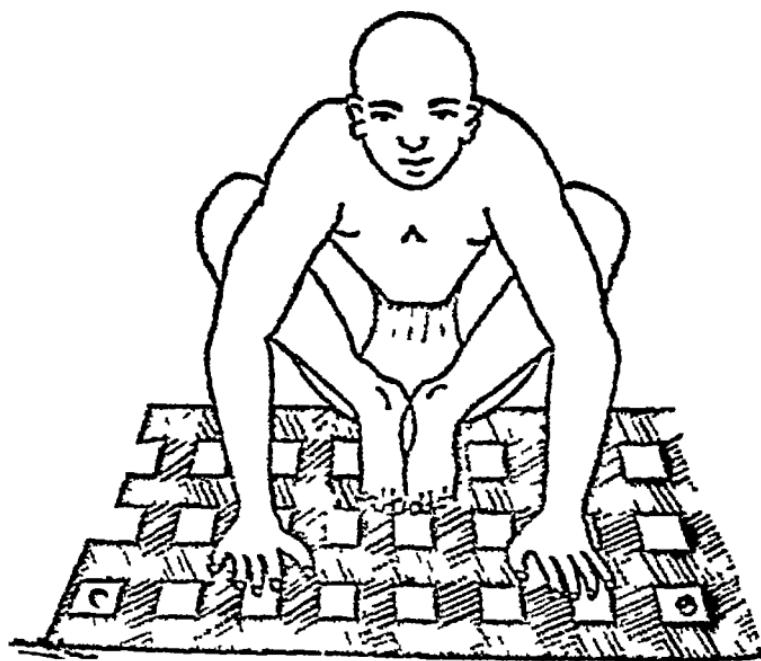
इसके अलावा इससे शरीर की अशक्तता दूर होकर बल की वृद्धि होती है। पेट विकारों को भी यह आसन दूर करता है।

(२३) गोमुखासन

विधि—पहले आसन पर घुटनों के बल बैठ जाइये। दोनों घुटने आपस में मिले रहें और पैर चूतड़ों के नीचे आजायँ। पैरों के पञ्जे पीछे की ओर निकाल कर उन्हें भी इधर उधर जमीन पर सटा देना चाहिये। तात्पर्य यह कि घुटनों से पंजे तक तमाम हिस्सा जमीन से सटा रहे शरीर तना हुआ सीधा रहना चाहिये और उसका भार एड़ियों पर छोड़ना चाहिये अब बायां हाथ ऊपर उठा कर पीठ की ओर मोड़िये और दाहिना हाथ पीठ के पीछे लेजाकर कोहनी से ऊपर को उठाये और बायें हाथ की तर्जनी अँगुली को पकड़िये। ध्यान रखना चाहिये कि हाथों की क्रिया करते समय सिर छाती या पेट जरा भी झुकने या मुड़ने न पावे, बिलकुल सीधा ही रहे। आसन में हाथ बदलते रहना चाहिये। इसके करने में दूसरा प्रकार भी है। वह पैरों का भेद है यानी एक पाव का घुटना दूसरे पाँव पर रख कर दाहिने पैर की एडी की गाठ बाये चूतड़ के नीचे और बाए पैर की एड़ी की गाठ दाहिने चूतड़ के नीचे रख कर बैठते हैं, बाकी क्रिया पूर्ववत् है।
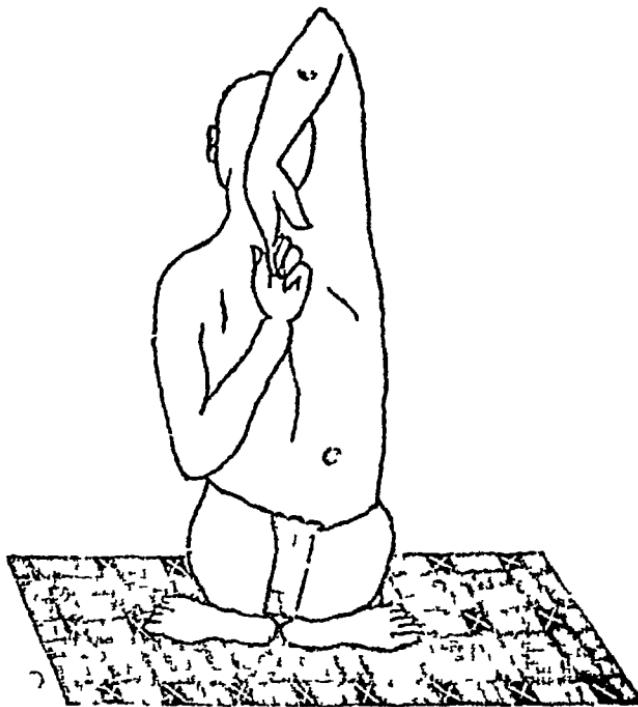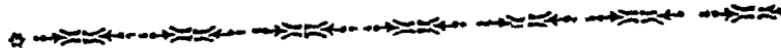
गोमुखासन

उठाते हुए श्वास भीतर रोके। दूसरे आसन की अवस्था में होकर हाथ भी जमीन से उठा कर पीठ पर लगाले और श्वास रोके। तीसरे आसन की अवस्था में दोनों घुटने भी ऊपर उठा ले और श्वास रोके। चौथे, आसन की अवस्था मे केवल तोंदी के पास पेट के सहारे रह कर हाथ और घुटने दोनों ऊपर उठा ले और श्वास रोके। प्रत्येक प्रकार कर चुकने पर धीरे धीरे श्वास छोड़ देनी चहिये। एक बार चारों प्रकार करने मे ५-६ मिनट लगेंगे।

समय क्रम—यह आसन कठिन नहीं पर अभ्यास से स्थिर होने की आवश्यकता है। अस्तु धीरे धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिये। ३ मिनट से १५ मिनट तक का अभ्यास बढ़ाना ठ क है

लाभ—इस आसन मे उदरविकार नष्ट होते हैं। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। मंदाग्नि या कोष्ठबद्ध नहीं रहता प्रारम्भिक क्षय-रोग नष्ट हो जाता है। प्राणशक्ति बढ़ती है। कहा गया है कि प्रणायम पूर्वक यदि यह आसन २—३ महीने भी नियम बद्ध किया जाय तो कैसा ही स्वप्न दोष हो दूर हो जाती है।

२५—वातायनासन

विधि—पहले सीधे खडे हो जाइये। फिर दोनों हाथों से
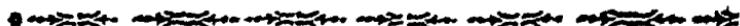
वातायनासन

दहिना पैर ऊपर उठाकर उसे बाईं जाँघ पर रखिये। पैर का पंजा जाँघ मे मिला रहे और एड़ी तोंदी के नीचे थोड़ी हटी रहे। अब कमर का ऊपरी हिस्सा रख कर बाया पैर बाँई ओर इस तरह से मोड़िये कि दाहिने पैर का घुटना बाँएँ पैर की एडी के टखने पर आकर रख जाय। दाहिनी जाँघ सीधी रहनी चाहिये, उसमें मोड़ न आने पावे। इस आसन को करते हुये पैर बदलते रहना चाहिये। आसन की अवस्था में हाथ छाती पर रखकर जोड़ लेने चाहिये।

समय क्रम—अभ्यास के द्वारा यह आसन एक मिनट से पॉच मिनट तक करना पर्याप्त होगा।

लाभ—इस आसन से पैरों के स्नायु खिंचते हैं, उनका रक्त प्रवाह शुद्ध होने लगता है और पैरो में मजबूती बढ़ती है। इसके अलावा इस आसन से जंघा दोष भी दूर होता है।

२६—वज्रासन

विधि—पैर की दोनों पिंडलियों को मोड़ कर आसन पर इस तरह बैठ जाइये कि चूतड़ पैरों पर रहें। पैर दोनों मिले हुये गुदा के पास रहें। पैरों का तलवा पीछे की ओर खुला हुआ हो। आगे के दोयों घुटने भी आपस में मिले रहें। शरीर
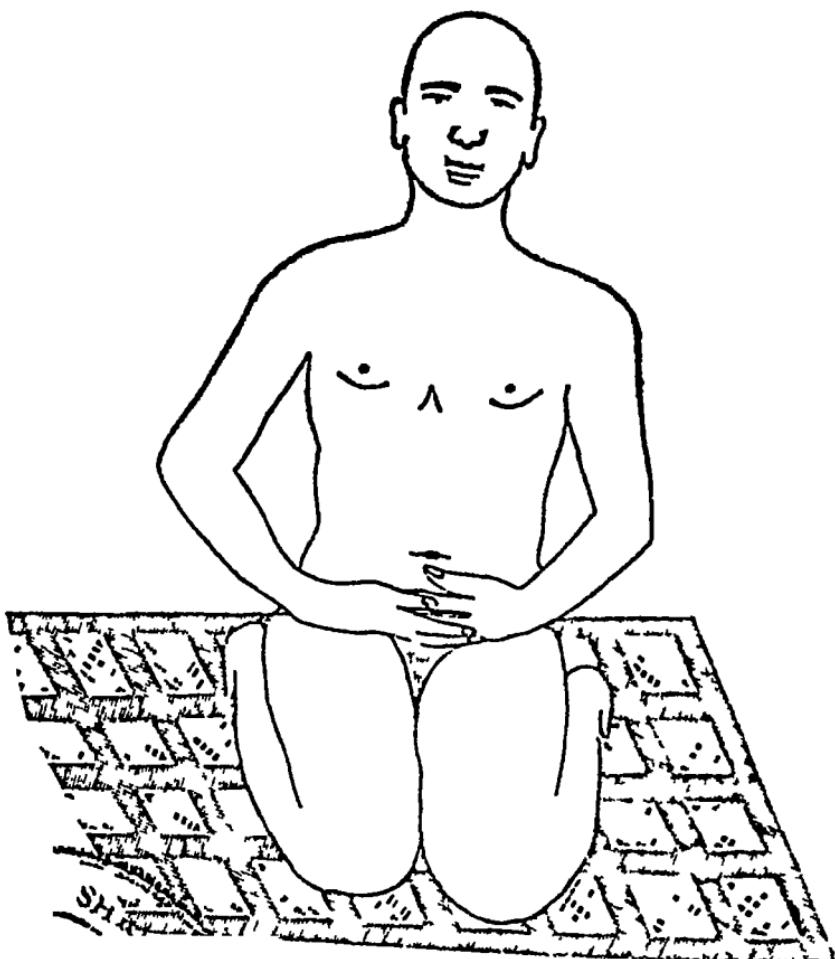
वज्रासन

से बिलकुल सीधा रखिये। गर्दन सीधी और नजर सामने हो। दोनों हाथ अपने घुटनों पर रक्खे हों और सीधे हों। याद रखना चाहिये कि पिंडलियों का जितना भाग जमीन से छुएगा आसन उतना ही ठीक और लाभकारी होगा।

कोई २ केवल घुटने और पैरों के पञ्जों के बल बैठकर नृतड एड़ी पर रखते हैं किन्तु इससे ऊपर का प्रकार अधिक अच्छा और लाभ कारी है।

वज्रासन को लगाये हुए ही यदि चित्त लेट जाया जाय और दोनो हाथ आपस में फँसाकर सिर के नीचे तकिया बना लिये जाँय, ठोडी कठ से लगाने का प्रयत्न किया जाय तो वह सुप्त वज्रासन कहलावेगा।

समय क्रम—धीरे धीरे एक से दश मिनट तक किया जा सकता है।

लाभ—इस आसन का असर पेट, जाँघों पर विशेष रूप से पडता है इस लिये उन स्थानों के दोषों को हटाने में इससे लाभ पहुँचता है ठोढी कठ में लगाने से गर्दन को विशेष लाभ होता है।

(२७) आकर्ण धनुरासन

विधि—आसन पर बैठ कर पहले दोनो पैर सीधे फैला

आकर्ण धनुरासन
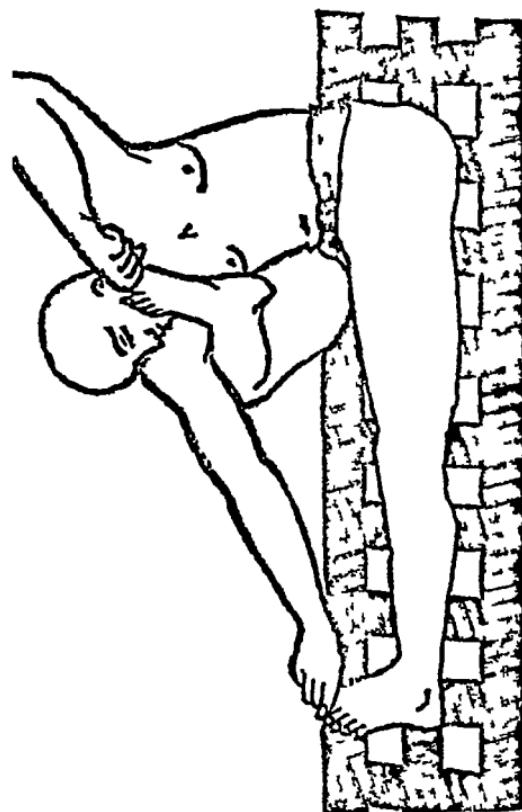
दीजिए। इसके बाद दोनों हाथों के दोनों पैरों के अँगूठे पकड़िये जैसा कि जानु-शिरासन में बतलाया गया है। किन्तु यह ध्यान रहे कि बायें हाथ से दाहिने पैर का और दाहिने हाथ से बायें पैर का अँगूठा पकड़ा जायगा। अब दाहिना पैर इसी अवस्था में रखकर बायाँ पैर हाथ के नीचे से लाकर खींचते हुये उसे दाहिने कान से मिलाइये। जिस प्रकार धनुष कान तक खींचा जाता है। पैर बदलते रहना चाहिये। यह आसन दायें हाथ से दायाँ और बाएँ हाथ से बायाँ पैर का अँगूठा पकड़ कर भी किया जाता है और दायाँ पैर दाहिने कान से तथा बायाँ बाएँ कान से मिलाया जाता है।

समय क्रम—शुरू शुरू में तो जानु शिरासन होना ही कठिन है फिर पैर लाकर कान से छुआना और भी कठिन है, इस लिये पहले ही पैर को कान से छुआने की ऐसी कोशिश न करनी चाहिये कि बहुत कष्ट हो। सहते सहते अभ्यास बढ़ाने से ठीक आसन लगने लगेगा। एक मिनट से आठ मिनट तक इसका अभ्यास बढ़ाया जा सकता है।

लाभ—इस आसन से हाथ पैरों के स्नायु विशेष रूप से खिंच कर निर्मल होते हैं। तथा घुटने, जाँघ आदि अंगों के दोष दूर होकर उनको लाभ पहुँचता है।

(२८) शलभासन

विधि—शलभ नाम है पतिंगा या टिड्डे का, उसी के समान शरीर को बना लेना शलभासन कहाता है। पहले पेट के वल लेट जाइये। हाथों को लम्वा करके शरीर से मिलते हुए उन्हें भी लेटा दीजिये। अव हाथों का सहारा लेते हुए पैरों को जाँघ तक ऊपर को उठाइये। ध्यान रहे कि घुटने मुड़ने न पावें, वल्कि विलकुल सीधे रहें। इसके वाद सिर, गर्दन, छाती और पेट को भी ऊपर उठाइये। इस आसन में भी शरीर कुछ तो हाथों के सहारे और तोंदी के चारों ओर ४-५ अगुल शरीर के सहारे सावना होता है।

समय क्रम—एक मिनट से १० मिनट तक प्रति सप्ताह आधा मिनट के हिसाव से इसका अभ्यास वढ़ाना चाहिये।

लाभ—इससे लगभग तमाम शरीर के स्नायु तनते हैं जिससे रक्त प्रवाह शुद्ध होने लगता है। जाँघ, छाती, पेट के सव अगों को विशेष लाभ पहुँचता है। कोष्ट-वद्धता; अग्निमान्द्य आदि पेट के सभी विकारों का शलभासन से शमन होता है।

२९—कंदपोडनासन

विधि—पहले दोनों पैर फैलाकर आसन पर वैठ जाइये।

कंदपीडनासन
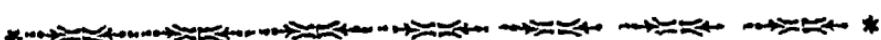
फिर दोनों पैरों को मोड कर उनके पजे मिलाइये और दोनों हाथो से उन्हें पकड कर लिग के आगे इस प्रकार लाकर रखिये कि एड़ियाँ आगे रहें और मिले हुये अँगूठे नीचे जमीन पर। अब अँगूठों को हाथ से आहिस्ता से ऐसा खींचना चाहिये कि एड़ियाँ जमीन में लग जायँ, दोनो घुटने दोनो ओर को खींचे रहे और आप पैर उलट कर इन पर बैठ जाइये। हाथ घुटनों पर रहे और बदन सीधा तना रहे। इसका दूसरा प्रकार यह भी है कि पैर फैलाकर बैठने के बाद एक पैर का पजा हाथ से घुमाकर धीरे धीरे पेट के ऊपर उठा ले जाय, इसी तरह दूसरे पैर का पंजा भी उठा ले जाय। पेट पर दोनों पैरो को ले जाकर उनके पजे आपस में मिला दे। पैरों के तलवे अगल बगल बाहर की ओर निकले रहें। शरीर तना रहे, घुटने जमीन पर जमे रहे और जोड लिये जायँ।

समय क्रम—यह आसन बहुत कठिन है क्योंकि इसमें पैरो को विपरीत घुमाना पड़ता है। इसलिये बहुत सावधानी से करना चाहिये। एकदम पूरा आसन करने का प्रयत्न करने से हानि होने की पूरी सभावना है। पहले पर्याप्त समय तक केवल पैरों के घुमाने का अभ्यास करना चाहिये जब पैर बिना कष्ट के घूमने लगे तो उनका एडियाँ और पंजें उलट कर पेट
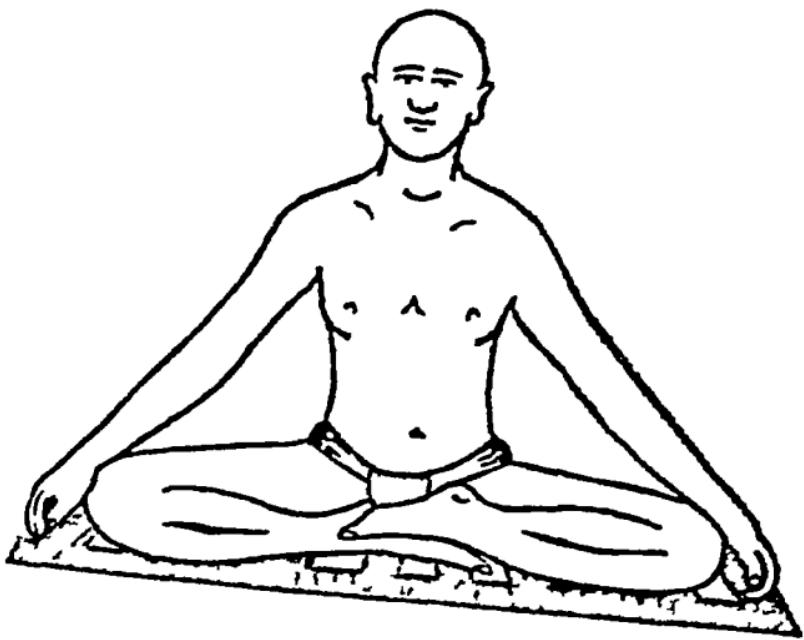
गुल्फ जघासन

पर ले जाने या नीचे दबा रखने का प्रयत्न करना चाहिये। लग-भग दो महीने में इस आसन की पूर्ण क्रिया करनी चाहिये फिर एक मिनट से पाँच मिनट तक का अभ्यास बढ़ाया जाय। प्रत्येक सप्ताह पन्द्रह सेकंड।

लाभ—कद शक्ति का वह स्थान है जहाँ मे सब नाड़ियाँ पैदा होती हैं। यह तोंदी के दो अँगुल नीचे से लेकर गुदा के दो अँगुल ऊपर तक होता है। इस आसन से कद के स्नायुओं का पूरा खिचाव और उन पर दवाव होने से कुडलनी शक्ति को बढ़ाती है। साथ ही इस आसन से घुटनों के रोग नष्ट होते और मज्जा ग्रन्थि शुद्ध होती है।

(३०) गुल्फ जंघासन

विधि—आसन पर पैर लम्बे फैलाकर बैठ जाइये। इसके बाद बाएँ पैर को घुटने से मोड़कर उसकी एडी बाई जांघ के मूल में लगाइये और पंजा सामने सीधा रखिए। पश्चात् दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसकी एड़ी दाहिनी जाँघ के मूल में लगाइये और पंजे को बाएँ पैर के पंजे के ऊपर रखिये। अब दोनों घुटनों को सीध में खूब तान दीजिए। दोनों एक लाइन मे सीधे आजायँ इसके बाद हाथों को सीधा तान कर

घुटनों पर इस तरह रखिये कि हाथों की अँगुलिया घुटनों के बाहर जमीन से छूती रहें। दृष्टि सामने, शरीर सीधा रखिये।

समय क्रम—अभ्यास के अनुसार पाँच मिनट से आधे घंटे तक यह आसन करना चाहिए।

लाभ—इस आसन से जननेन्द्रियों को बहुत लाभ पहुँचता है उनमें मजबूती आती है। कमर दर्द में लाभ होता है। जांघों के स्नायु खिचने से उनका रक्त प्रवाह शुद्ध होता है।

(३१) उत्कटासन

विधि—पहले सीधे खड़े हो जाइये। दोनों पैर, घुटने एड़ी और पंजे आपस में मिले रहने चाहिये और दोनों हाथ कमर पर। अच्छा हो पेट को कुछ भीतर की ओर खींचिये और घुटनों को मोड़ते हुये शरीर सीधा रखते हुये उसे धीरे धीरे पीछे की ओर झुकाइये। इस प्रकार बिलकुल कुर्सी पर बैठने को शकल में हो जाइये। जब कमर झुककर घुटनों के सामने आ जाय तो उसी दशा में स्थिर हो जाना चाहिये। इसका अभ्यास हो जाने पर एड़ियों को भी जमीन से उठा दीजिये और केवल पंजों के बल स्थिर हूजिए। इसका भी अभ्यास हो जाने पर घुटनों को खोलिये और उन्हें काफी फैला दीजिए। ध्यान रहे

कि पजे मिले हुए ही रहेंगे।

समय क्रम—आसन की सभी क्रियाओं को शनैः शनैः करते हुए पूर्ण रूप पर पहुँचना चाहिये और स्थिर रहना चाहिये। अधिक कष्ट मालूम होते ही आसन खोल देना चाहिये।

लाभ—इस आसन से पैरों के स्नायुओं का खिंचाव पूर्ण रूप से होने से स्नायु शुद्ध और मजबूत होते हैं। पैरों की कमजोरी नष्ट हो जाती है। स्थूल पाँव (हाथी पाँव) वाले को पूरी तरह इस आसन का अभ्यास करना चाहिये उससे बीमारी दूर होकर पैर ठीक दशा में आ जायँगी। जघा रोग, कमर दर्द में भी यह आसन लाभकारी है।

३२—पादहस्तासन

विधि—पहले सीधे खड़े हो जाइये फिर हाथ धीरे धीरे नीचे को झुकाइये और नीचे ले जाकर हाथो से पैरो के दोनों अँगूठो को पकड़िए। और पैर आपस में मिले और विल्कुल सीधे रहे, घुटने मुड़ने न पावे। इसके वाद सिर दोनों हाथों के, बीच से भीतर की ओर ले जाकर नाक, घुटनों से मिलाइये। दाहिने हाथ से बाएँ पैर और बाएँ हाथ से दाहिने पैर का अँगूठा पकड करके भी यह आसन किया जाता है। यह आसन
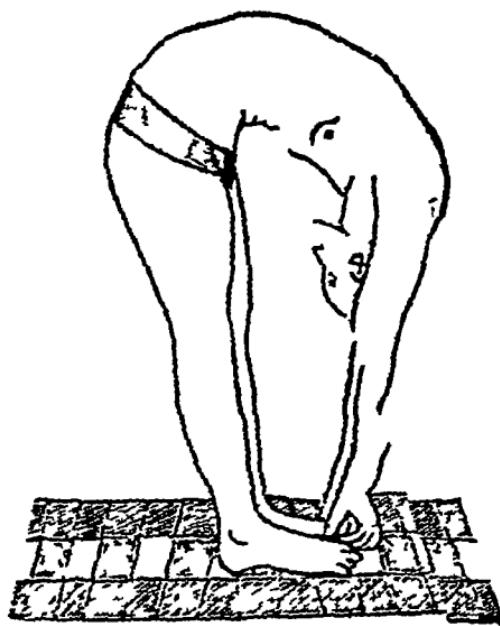
पादहस्तासन

करते समय पेट को भीतर की ओर खूब जोर से खीचना चाहिये।

समय क्रम—पहले केवल हाथों से पैरों के अंगूठे पकड़ने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके बाद धीरे धीरे सिर को घुटनों की ओर ले जाकर उन से मिलाने का यत्न करना चाहिये। एक मिनट से लेकर दश मिनट तक इसका अभ्यास करना पर्याप्त है।

लाभ—इस आसन से पैर, पीठ, कमर और पेट के स्नायुओं का खूब खिचाव होता है जिससे वे पूर्ण रीति से शुद्ध और निर्मल हो जाते हैं। अंतों के व पेट के प्रायः समस्त विकार इस आसन से नष्ट होते हैं। अजीर्ण, कोष्टवद्धता शीघ्र दूर होती है। इससे सुषुम्ना नाड़ी का खिचाव होने से उनका बल बढता है शरीर का आलस्य दूर होकर बदन में स्फूर्ति आती है। कृमि दोष, पाडु और मेद-दोष दूर होते हैं। नीरोग्य पुरुष को इस आसन के नित्य करने से कभी पेट की शिकायत नहीं होती।

(२३) धनुरासन

विधि—पहले आसन पर लेट जाइये। फिर दोनों पैरों

३४—पवन-मुक्तासन

विधि—पहले आसन पर सीधे लेट जाइये फिर एक पैर को घुटने से मोड़कर छाती के पास लाइये और दोनों हाथों की गुच्छी डालकर उसे खूब जोर से दबाइये। इसके बाद पैर को सीधा कर दीजिये और इसी प्रकार दूसरा पैर उठाकर दबाइये। उठे हुए पैर को खोलकर जमीन में भी रखा जा सकता है और उठाये हुए सीधा मत्तक भी रखा जा सकता है। इसी को दोनों पैर एक साथ उठाकर और घुटनों को मोड़कर भी किया जाता है।

समय क्रम—इस आसन को तीन मिनट से दस बारह मिनट तक करना चाहिये।

लाभ—इस आसन से पेट की वायु, पेट के दबने से नीचे की ओर जाती है, जिससे अपान वायु ठीक निकल कर पेट शुद्ध होता है। सुबह जागते ही यदि थोड़ा पानी पीकर लेटे ही लेटे यह आसन किया जाय, इसके बाद पायखाने जाया जाय तो शौच जल्दी और खुलकर होता है। पेट की बिगड़ी वायु को यह आसन शुद्ध करने में समर्थ होता है। पवन-मुक्तासन से उदर शूल भी नष्ट होता है।

३५—द्विहस्त भुजासन

विधि—पहले पंथी मार कर आसन पर बैठ जाइये। फिर

द्विहस्त भुजासन